षोडशोपचार पूजन पद्धती

षोडश संस्कार एवं हवन पद्धती

५२०० वर्षों के लम्बे अन्तराल के बाद श्रीमद्भगवद्गीता
की शाश्वत व्याख्या 'यथार्थ गीता' के सौजन्य से

षोडशोपचार पूजन-पद्धति
षोडश संस्कार एवं हवन-पद्धति

संकलनकर्ता–

परमपूज्य श्री परमहंस जी महाराज का कृपा-प्रसाद

स्वामी श्री अड़गड़ानन्द जी

श्री परमहंस आश्रम शक्तेषगढ़

ग्रा.पो.– शक्तेषगढ़, चुनार, मीरजापुर (उ०प्र०)

प्रकाशक–

श्री परमहंस स्वामी अड़गड़ानन्द जी आश्रम ट्रस्ट

न्यू अपोलो स्टेट, गाला नं. ५, मोगरा लेन (रेलवे सब-वे के पास)

अंधेरी (पूर्व), मुम्बई – ४०००६९ (भारत)

धर्म-सन्देश

भारत के वैदिक ऋषि-मुनियों ने मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान श्रीराम से भी हजारों वर्ष पूर्व अपनी कठोर तपश्चर्या में अनवरत प्रयास के फलस्वरूप एक परमात्मा को प्रत्यक्ष किया और पूरे भारत की वनस्थलियों में आश्रम बनाकर शिष्य-परम्परा में हृदयंगम कराते हुए सँजोकर रखा। वही सत्य आज से पाँच हजार वर्ष पूर्व भगवान श्रीकृष्ण ने गीता में भली प्रकार दृढ़ाया। उन्होंने कहा कि एक आत्मा ही सत्य है, अन्य जो कुछ भी है वह नश्वर है, अस्तित्व-विहीन है। यह सन्देश उन्होंने मानवमात्र को सम्बोधित कर कहा। विश्व के परवर्ती महापुरुषों ने इसे ज्यों-का-त्यों अपनाया तथा देशज और क्षेत्रीय भाषाओं में प्रस्तुत किया। अहुरमज्दा, गॉड, अल्लाह इत्यादि विविध नामों से पुकारा जो एक ही परमात्मा का बोध कराते हैं। अतः वे सब आपके अनुयायी ही हैं। उस एक परमात्मा की प्राप्ति की क्रिया धर्म है। धर्म एक है अतः धर्मनिरपेक्षता के विषय में नारे लगानेवाले प्रतीत होता है, भ्रमित हैं; क्योंकि एक से अधिक संख्या होने पर ही पक्ष और विपक्ष का प्रश्न उठता है। इस रहस्य को भली प्रकार जानने एवं उचित व्याख्या प्राप्त करने के लिए देखें– '**यथार्थ गीता**'। यह गीता धर्म का समग्र बोध कराती है। यह मानवमात्र का शास्त्र है।

ईश्वर क्या है?, कहाँ रहता है?, कैसे प्राप्त करें?–इसके लिए देखें– '**यथार्थ गीता**'।

निवेदक– भक्तमण्डल

गुरु-वन्दना

।। ॐ श्री सद्गुरुदेव भगवान् की जय ।।

जय सद्गुरुदेवं, परमानन्दं, अमर शरीरं अविकारी।
निर्गुण निर्मूलं, धरि स्थूलं, काटन शूलं भवभारी।।

सूरत निज सोहं, कलिमल खोहं, जनमन मोहन छविभारी।
अमरापुर वासी, सब सुख राशी, सदा एकरस निर्विकारी।।

अनुभव गम्भीरा, मति के धीरा, अलख फकीरा अवतारी।
योगी अद्वेष्टा, त्रिकाल द्रष्टा, केवल पद आनन्दकारी।।

चित्रकूटहिं आयो, अद्वैत लखायो, अनुसुइया आसन मारी।
श्री परमहंस स्वामी, अन्तर्यामी, हैं बड़नामी संसारी।।

हंसन हितकारी, जग पगुधारी, गर्व प्रहारी उपकारी।
सत्-पंथ चलायो, भरम मिटायो, रूप लखायो करतारी।।

यह शिष्य है तेरो, करत निहोरो, मोपर हेरो प्रणधारी।
जय सद्गुरु.....भारी।।

।। ॐ ।।

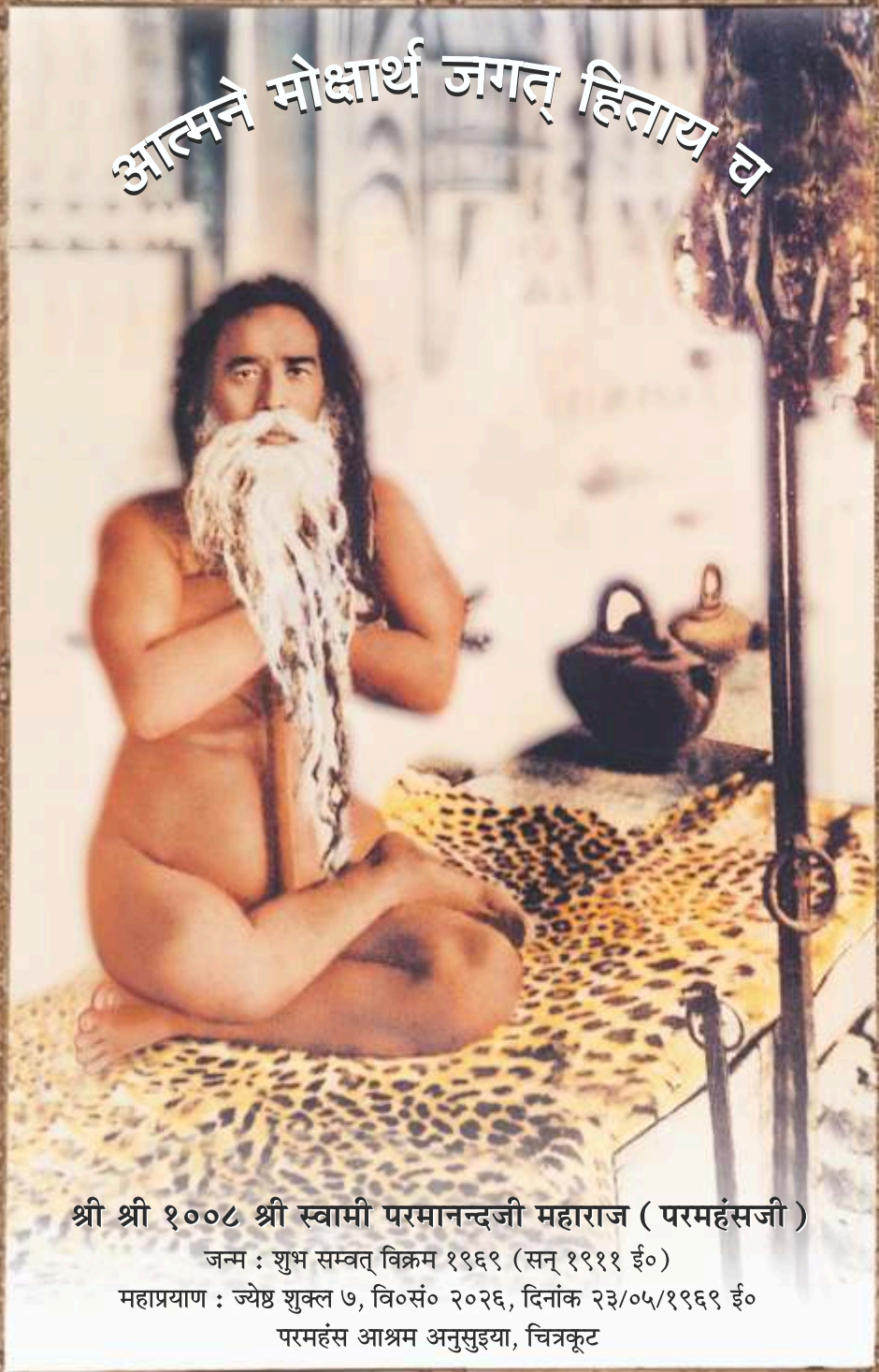

श्री श्री १००८ श्री स्वामी परमानन्दजी महाराज (परमहंसजी)

जन्म : शुभ सम्वत् विक्रम १९६९ (सन् १९११ ई०)

महाप्रयाण : ज्येष्ठ शुक्ल ७, वि०सं० २०२६, दिनांक २३/०५/१९६९ ई०

परमहंस आश्रम अनुसुइया, चित्रकूट

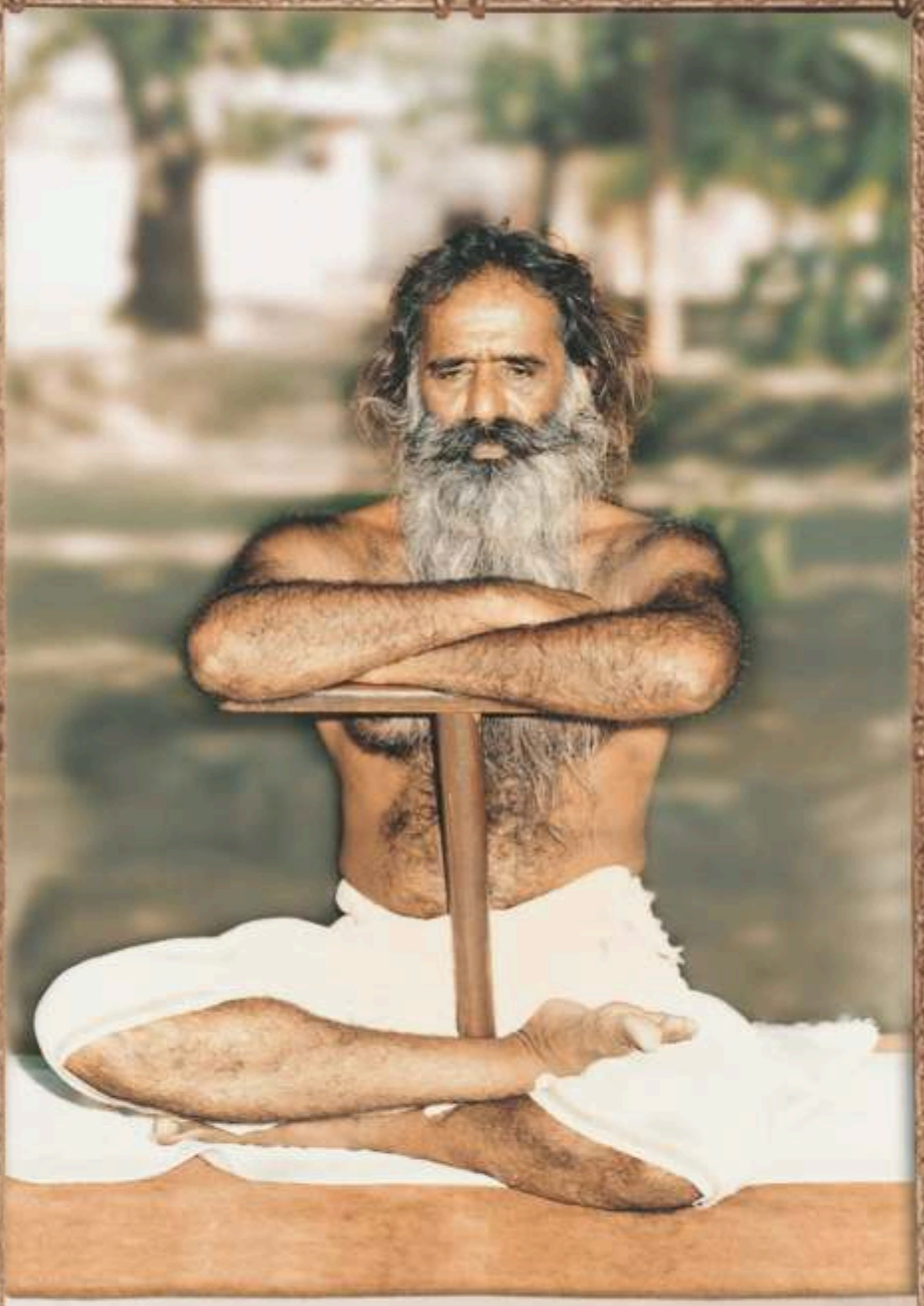

श्री स्वामी अड़गड़ानन्दजी महाराज

(परमहंस महाराज का कृपा-प्रसाद)

कर्मकाण्ड ?

कर्मकाण्ड पोंगापंथी नहीं,
मानव-जीवन की अनिवार्य आवश्यकता है।

इसे जन-जन के हृदय में पहुँचाना
पुरोहितजनों का उद्देश्य है।

— स्वामी अड़गड़ानन्द

एकं शास्त्रं देवकीपुत्र गीतम्
एको देवो देवकीपुत्र एव।
एको मन्त्रस्तस्य नामानि यानि
कर्माप्येको तस्य देवस्य सेवा॥

– भगवान वेदव्यास

अर्थात् एक ही शास्त्र है जो देवकी-पुत्र भगवान श्रीकृष्ण ने श्रीमुख से गायन किया– गीता! कण-कण में व्याप्त एक ही परम सत्य, पूजने योग्य देव है। उस गायन में जो सत्य बताया– आत्मा! उस गायन में उन महायोगेश्वर ने क्या जपने के लिए कहा? ओम्! अर्जुन! ओम् अक्षय परमात्मा का नाम है। उसका जप कर और ध्यान मेरा धर। एक ही कर्म है, गीता में वर्णित परमदेव, एक परमात्मा की सेवा! उन्हें श्रद्धा से अपने हृदय में धारण करें। अस्तु, आरम्भ से ही गीता आपका शास्त्र रहा है।

विषय–सूची

क्रमांक	*विषय*	*पृष्ठांक*
1.	पूर्वोक्त	1
2.	श्रद्धा एक परमात्मा में....	8
3.	न्यास	12
4.	मंगलपाठ	21
5.	षोडशोपचार पूजन-पद्धति	22
6.	हवन-पद्धति	37
7.	षोडश संस्कार	45
8.	निष्कर्ष	52
9.	नारायण बलि	55

॥ ॐ ॥

पूर्वोक्त

'संस्कार' शब्द प्राचीन वैदिक साहित्य में नहीं मिलता किन्तु यह शब्द वेदाङ्ग के सूत्र साहित्य में प्रचुरता के साथ प्रयुक्त हुआ है। महर्षि जैमिनी की पूर्व मीमांसा का भाष्य करते हुए शबर स्वामी ने लिखा है– **'संस्कारो नाम स भवति यस्मिन् जाते पदार्थो भवति योग्यः कस्यचिदर्थस्य'** अर्थात् संस्कार वह है जिसके होने से कोई पदार्थ किसी कार्य के योग्य हो जाता है।

'संस्कार' का शाब्दिक अर्थ है– सः अंश आकार। सः माने वह परमात्मा। बच्चे-बच्चे में उसका आंशिक आकार डाल देना वास्तविक संस्कार है। पुरोहित जीवन में घटनेवाली हर घटना पर पहुँच कर यजमान को यह सिखाता है कि परमात्मा एक है। उनके अंश-मात्र से सृष्टि का संचार है। वे ही परम सत्य, नित्य, सनातन हैं। उन्हें जानना चाहिए। उन्हीं का स्मरण कीजिए। प्रत्येक संस्कार में यह सूत्र पढ़े जाते हैं कि परमात्मा एक है, सत्य है, सनातन है, इसलिए उनका स्मरण कीजिए। इसके लिए समग्र शास्त्र गीता है।

संस्कार से शारीरिक विकृतियों का निराकरण, आत्म-निग्रह, परस्पर सहयोग, शास्त्रविहित क्रियाओं को करने की योग्यता के साथ ही मानव-शरीर ब्रह्म की प्राप्ति के योग्य बनाया जाता है। ईश्वर का आंशिक बीजारोपण प्रत्येक मानव के मन में करना संस्कारों का मुख्य उद्देश्य है। संस्कारों के सम्पादन से नैतिक एवं सांस्कृतिक विकास, मनोरंजन-अलंकरण के अवसरों की प्राप्ति, उत्तरदायित्व का बोध तथा सामाजिक सम्बन्धों की स्थापना भी होती है।

गर्भाधान से लेकर मृत्युपर्यन्त तथा मृत्यु के पश्चात् भी किये जाने वाले संस्कारों का विवरण कल्पसूत्रों में मिलता है। कल्प का अर्थ है वेदविहित कर्मों की क्रमपूर्वक कल्पना करनेवाला शास्त्र! विवाह, उपनयनादि संस्कारों तथा

यज्ञ विधानों को क्रमबद्ध रूप में वर्णन करनेवाले ग्रन्थों को कल्प कहते हैं। सूत्र का अर्थ है संक्षेप! इस प्रकार कल्पसूत्र का अर्थ है– यज्ञादि नियमों को संक्षेप से कहना। कल्पसूत्र चार प्रकार के हैं– (1) श्रौत-सूत्र, (2) गृह्य-सूत्र, (3) धर्म-सूत्र और (4) शुल्व-सूत्र। वैदिक संहिताओं के यज्ञादि विधानों का संक्षिप्त विवरण देनेवाले सूत्र श्रौत हैं। गृहस्थ जीवन से सम्बद्ध अनुष्ठान गृह्य-सूत्रों में हैं। धर्मसूत्र सामाजिक जीवन के रीति-रिवाज या कानून के आदिग्रन्थ हैं। शुल्व-सूत्र रस्सी द्वारा माप कर वेदी की रचना के नियम हैं।

इनमें से गृह्य-सूत्रों में 42 संस्कारों का वर्णन है, किन्तु गौतम धर्मसूत्र में चालीस संस्कारों को ही लिया गया है– 1. गर्भाधान, 2. पुंसवन, 3. सीमन्तोन्नयन, 4. जातकर्म, 5. नामकरण, 6. अन्नप्राशन, 7. चौल या चूड़ाकरन, 8. उपनयन, 9 से 12 तक चार वेद व्रत (महानाम्नी, महाव्रत, उपनिषद व्रत, गोदान), 13. स्नान या समावर्तन, 14. विवाह, 15 से 19 तक पाँच महायज्ञ (देवयज्ञ, पितृयज्ञ, नृयज्ञ, भूतयज्ञ, ब्रह्मयज्ञ), 20 से 26 तक सात पाक यज्ञ (अष्टका, पार्वण, स्थालीपाक, श्रावणी, आग्रहायणी, चैत्री, आश्वयुजी), 27 से 33 तक सात हविर्यज्ञ– (अग्न्याधान, अग्निहोत्र, दर्शपौर्णमास, आग्रयण, चातुर्मास, निरूढ़ पशुबन्ध, सौत्रामणि) तथा 34 से 40 तक सात सोमयज्ञ, अग्निष्टोम (अत्यग्निष्टोम, उक्थ, षोडशी, वाजपेय, अतिरात्र और अप्तोर्याम।)

संस्कारों की संख्या के सम्बन्ध में सूत्रकारों तथा स्मृतिकारों में मतैक्य नहीं है। अंगिरा पचीस संस्कार मानते हैं तो व्यास सोलह! मनु और याज्ञवल्क्य ने अन्त्येष्टि को भी संस्कारों में गिना है। व्यासस्मृति में निष्क्रमण, कर्णवेध और विद्यारंभ को संस्कार माना गया है। वैखानस ने गर्भाधान से पूर्व ऋतु संगमन/निषेक या चतुर्थी होम को भी एक संस्कार माना है। वशिष्ठ ने गर्भस्थ शिशु की रक्षा के लिए गर्भ के आठवें महीने विष्णुबलि तथा आसन्न प्रसवा के सुकर प्रसव हेतु सोष्यन्ती कर्म की चर्चा की है। गर्भाधान से विवाहपर्यन्त सोलह या अठारह संस्कार कायिक हैं, शेष संस्कार यज्ञपरक हैं।

पति द्वारा पत्नी को शुक्रधारण कराना गर्भाधान है। पुंसवन पुं (पुरुष) सन्तान की कामना है। सीमन्तोन्नयन में गर्भिणी के सीमन्त (माँग) केशों का उन्नयन तथा गर्भ की रक्षा के प्रयास होते हैं। जातकर्म में शिशु की नाल काटकर स्नान कराते, घी-शहद चटाते और दीर्घायु की कामना करते हैं। जन्म के बारहवें दिन (बरही) पर शिशु को नाक्षत्र नाम (राशि नाम), गुप्त नाम, ज्ञात नाम, यज्ञ नाम– इन चार नामों से सम्बोधन प्रदान किया जाता है। निष्क्रमण या सूर्यदर्शन के दिन प्रसूता एवं शिशु को सूतिका गृह से बाहर निकलने की अनुमति मिल जाती है। अन्नप्राशन छठें महीने तब होता है जब शिशु अन्न ग्रहण करने योग्य हो जाता है। धर्मसूत्रों में बकरे, तीतर या मछली का मांस खिलाना भी लिखा है। वर्षगाँठ, वर्षवर्धन, अब्दपूर्ति या जन्मदिन मनाने की चर्चा शांखायन, बोधायन, गोभिल इत्यादि ने किया है। चूड़ाकरण या मुण्डन में गर्भ के अपवित्र केशों का मुण्डन, बालों को गोबर में लपेटकर गुप्त स्थान में गाड़ने तथा शिखा रखने का प्रचलन है। एक से पाँच वर्ष तक कभी भी कर्णवेध और पाँचवें वर्ष ही विद्यारंभ की परम्परा है। उपनयन में मेखला-बन्धन, उपवीत-दण्ड धारण कराया जाता है, गायत्री मंत्र सिखाया जाता है। वेदारंभ के चार व्रत अध्ययन-सम्बन्धी विभिन्न सोपानों के निमित्त हैं। केशान्त तथा गोदान ब्रह्मचर्य व्रत के समापन का सूचक है। समावर्तन अध्ययन के पश्चात् गुरुकुल से घर की ओर प्रस्थान है।

विवाह वर-कन्या का पति-पत्नी के रूप में सन्तानोत्पत्ति हेतु गृहस्थाश्रम में प्रवेश है। अग्नि के समक्ष सप्तपदी, पाणिग्रहण, अश्मारोहण सिन्दूरदान, लाजाहोम इत्यादि क्रियाओं को सम्पादित कर वर द्वारा कन्या को उसके पिता के घर से ले जाना विवाह है। आपस्तम्ब धर्मसूत्र में विवाह वर्षगाँठ मनाने को कहा गया है। 80 वर्ष 8 माह के व्यक्ति को ब्रह्मशरीर कहा जाता है क्योंकि तब तक वह एक हजार पूर्ण चन्द्र देख चुका होता है।

आजकल विवाह और अन्त्येष्टि को छोड़कर अन्य संस्कार सभी जातियों में प्रायः नहीं किये जा रहे हैं। गर्भाधान टेस्ट-ट्यूब में, जन्म अस्पतालों में,

शिक्षा कान्वेन्ट में, विवाह कोर्ट में, शवदाह विद्युतगृहों में होने लगा है। जन्मदिन पर केक काटना, उपहार लेना ईसाइयत से प्रभावित है। वैसे भी, संस्कार न करने पर प्रायश्चित का विधान है। इन सरल परिहारों के कारण भी संस्कारों का और उनकी पोषिका स्मृतियों का भी लोप होता जा रहा है।

वास्तव में मनुष्य के जीवन में घटनेवाली हर घटना एक काण्ड है और हर घटना पर कर्त्तव्य का बोध कराना कर्मकाण्ड है। घटना हर परिवार में होती ही है। कहीं जन्म होता है, तो कोई मरता है। कहीं शादी होती है, तो किसी का अन्नप्राशन। किसी का गृह निष्क्रमण है, तो किसी का गृह-प्रवेश। भारतीय मनीषियों ने मानव-जीवन में होनेवाली इन स्वाभाविक घटनाओं में से पन्द्रह-सोलह को चुना और इन अवसरों पर प्रत्येक परिवार में जाकर उस एक परमात्मा के आंशिक आकार का बीजारोपण करने के लिए षोडश संस्कारों का विधान बनाया। बच्चे-बच्चे में गर्भावस्था से ही एक परमात्मा का संस्कार डाल देना तथा उस एक परमात्मा को पाना ही मानव मात्र का कर्म है–इस कर्म का बोध करा देना बस इतना ही शुद्ध कर्मकाण्ड है।

वैदिक युग में घर-घर जाकर शाश्वत एकमात्र परमात्मा का बोध कराना पुरोहित का कर्त्तव्य था। उपर्युक्त अवसरों पर वेद के पुरुष-सूक्त की ऋचाएँ पढ़ी जाती थीं और उनके साथ ही मनुष्य को प्रिय लगनेवाली वस्तुएँ, प्रिय भोजन, ताम्बूल, नये वस्त्र, सुगन्धि इत्यादि दी जाती थी, जिससे इन वस्तुओं का प्रयोग करते समय उस एक परमात्मा को प्राप्त करने का लक्ष्य सदैव याद रहे। हर वस्तु को धारण करते समय परमात्मा की विभूतियों का स्मरण होता रहे। इन मन्त्रों के अन्त में अर्घ्यम्, पाद्यम्, नैवेद्यम् कहकर पुरोहित भगवान् के हाथ-पाँव धुलाने की भावना करते हैं और हर वस्तु उन प्रभु के लिए हुआ करती है और कहीं न तो भगवान् का हाथ-पाँव धुलाते हैं और न अपना धोते हैं बल्कि यजमान के उसके अबोध होने पर, जिस परिवार में काण्ड हुआ है, उसके मुखिया के हाथ-पाँव धुलाते हैं। जिसका आशय केवल इतना ही है कि हाथ धोते, पाँव धोते, पानी पीते, भोजन करते, वस्त्र-गन्ध-शय्या किं बहुना

मांगलिक-अमांगलिक हर वस्तु के उपयोग में एक परम प्रभु की विभिन्न अवस्थाओं (विभूतियों) का चिन्तन होता रहे। ये वस्तुएँ हृदय में स्थित परमात्मा को अर्पित की जाती हैं, हाथ-पाँव धुलाये जाते हैं, जिससे बच्चा-बच्चा यह समझ ले कि परमात्मा उनके हृदय के भीतर है जिनका प्रत्यक्ष दर्शन करना है। जिससे मानव मात्र, आबाल-वृद्ध उस सदा रहनेवाले शाश्वत परमात्मा की जानकारी प्राप्त करे, सार्वभौम कल्याण हो सके। इस लक्ष्य से भटक जाने का अवसर न मिले।

यह स्पष्ट करना आवश्यक हो गया है कि धर्म के अन्तर्गत केवल एक बात आती है– आवागमन से रहित शाश्वत शान्ति की खोज। यह शान्ति सर्वत्र व्याप्त उस एक शाश्वत परमात्मा में ही है, जिसे खोजने के लिए प्रत्येक मनुष्य को अपने हृदय में उतरना है।

एक परमात्मा की विभूतियों का भली प्रकार चित्रण वेद के पुरुष-सूक्त में है। पुरुष-सूक्त नामकरण भी विशेष अर्थ रखता है– **'पुरः शेते इति पुरुषः'**–वह हृदयरूपी पुर में निवास करता है, अतएव उस परम पुरुष को खोजने की स्थली हृदय-देश है; बाहर नहीं। आज भी कर्मकाण्ड के नाम पर पुरुष-सूक्त के वही मन्त्र पढ़े जाते हैं; किन्तु जन-सामान्य की भाषा संस्कृत न होने के कारण लोग इसका आशय समझ नहीं पाते।

अतः प्रत्येक पुरोहित को चाहिए कि इन ऋचाओं का आशय क्षेत्रीय बोल-चाल की भाषा में समझाकर बोध करा दें कि परमात्मा एक है, वही शाश्वत है। **'आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनोऽर्जुन'** (गीता, 8/16)– ब्रह्मा से लेकर यावन्मात्र जगत् नाशवान् है। ब्रह्मा से उत्पन्न देवी-देवता भी **'क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति'** (गीता, 9/21)– पुण्य क्षीण होने पर मृत्युलोक में गिरते हैं, परवश हैं, उनकी पूजा अविधिपूर्वक होती है। अतएव एक परमात्मा के प्रति आस्थावान् होना चाहिए। वेद के ऋषि कहते हैं–

हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्।

स दाधार पृथिवीं द्यामुते मां कस्मै देवाय हविषा विधेम्॥

(ऋग्वेद, 1/121/1)

अर्थात् सोने-जैसा चमकता हुआ परमात्मा सबसे पहले उत्पन्न हुआ। पैदा हुए सभी प्राणियों का वही एकमात्र पति हुआ। उसी ने पृथ्वी और आकाश को धारण किया। उसके अतिरिक्त किस देवता की हवि द्वारा पूजा करें?

स्पष्ट है कि एकमात्र परमात्मा को पाना हमारा-आपका कर्त्तव्य (कर्म) है। इसी नियत कर्म का क्रमबद्ध वर्णन गीता में है, जिसके अन्तर्गत दैवी सम्पद् नामक सद्गुणों का विकास करना, एकान्त देश का सेवन, श्वास-प्रश्वास द्वारा ॐ या भगवान् के दो-ढाई अक्षर के किसी एक नाम का जप, इन्द्रियों का दमन, मन का शमन, धारावाही चिन्तन, युक्ताहार-विहार और तत्त्वदर्शी महापुरुष की शरण में जाना होता है। इसी क्रिया द्वारा चलकर हृदयस्थ परमात्मा को जान लेने के अतिरिक्त मृत्यु को जीतने का अन्य कोई भी उपाय नहीं है।

साधन-सम्पन्न पूर्वजों ने जिस शाश्वत सत्य को पाया था, वह परम पुरुष यही हृदयस्थित परमात्मा हैं। हर परिवार में घर-घर जाकर उन्होंने इसी शाश्वत सत्य को दृढ़ाया था, और आज भी जो सत्य को दृढ़ाते हैं, श्रद्धा के पात्र हैं। दक्षिणा इसका मूल्य नहीं, कृतज्ञता ज्ञापन मात्र है। इसके बदले उन्हें दक्षिणा देना शाश्वत सत्य को कायम रखना है, जिससे जन-जन तक इस जानकारी के प्रेषक को प्रोत्साहन मिले। गीता में है–

यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम्।
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः॥18/46॥

जिस परमात्मा से सभी भूतों की उत्पत्ति हुई है, जिससे सम्पूर्ण जगत् व्याप्त है, उस परमेश्वर को अपने स्वभाव से उत्पन्न कर्म करने की क्षमता के अनुसार पूजन-अर्चन कर मनुष्य परम सिद्धि को प्राप्त होता है। आप शूद्र की स्थिति के हों, वैश्य की स्थिति के हों, क्षत्रिय अथवा ब्राह्मण की स्थिति के ही क्यों न हों – सबको उस परमात्मा का ही अर्चन-भजन करना चाहिए।

भगवान श्रीकृष्ण का कहना है कि अर्जुन! हम दोनों के इस संवाद को जो मेरे भक्तों में कहेगा, उसके द्वारा मैं पूजित होऊँगा अर्थात् उसकी पूजा पूर्ण हुई किन्तु जिनका कोई स्तर नहीं है, अभी जो साधना में अबोध हैं, उन्हें शास्त्रोक्त पूजन-अर्चन विधि का उपदेश करना है। इस पूजन-विधि का बोध कराना कर्मकाण्ड है।

जब से शास्त्र रचे गये तभी से उन सभी शास्त्रों में गीता ही धर्मशास्त्र रही है। **'गीता सुगीता कर्तव्या किमन्यैः शास्त्रसंग्रहैः'**–गीता भली प्रकार मनन स्वाध्याय करके हृदय में धारण करने योग्य है फिर अन्य शास्त्रों के संग्रह की क्या आवश्यकता? क्योंकि गीता स्वयं पद्मनाभ भगवान के श्रीमुख से निःसृत वाणी है। इसलिए गीता मानव मात्र का धर्मशास्त्र है।

गीता के मध्य उपदेश देते हुए पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण ने स्वयं कहा– **'इति गुह्यतमं शास्त्रम्'**–अर्जुन! यह गोपनीय शास्त्र है। इसे जानकर लोग इस लोक में परम समृद्धि और परम श्रेय को प्राप्त कर लेंगे; किन्तु इस गीतोक्त विधि को त्यागकर अन्य-अन्य विधियों से अर्चन करने से न सिद्धि है, न सुख और न परम गति ही है। इसलिए तुम्हारे कर्त्तव्य और अकर्त्तव्य की व्यवस्था में गीता ही प्रमाण है।

ये तु धर्म्यामृतमिदं यथोक्तं पर्युपासते।
श्रद्दधाना मत्परमा भक्तास्तेऽतीव मे प्रियाः॥12/20॥

जो मेरे परायण हुए हार्दिक श्रद्धायुक्त पुरुष गीतोक्त धर्ममय अमृत का भली प्रकार सेवन करते हैं, वे समस्त भक्तों में मुझे अतिशय प्रिय हैं। अन्य कुछ करना वास्तव में इस परम पावन समाज को भ्रम में डालना है। अतः षोडश संस्कारों एवं षोडशोपचार पूजन विधि में मंत्र गीता से ही पढ़े जायँ।

– संकलनकर्ता

॥ ॐ श्री परमात्मने नमः ॥

श्रद्धा मात्र परमात्मा में

पुरोहित को चाहिए कि कर्मकाण्ड के आरम्भ में ही यजमान की श्रद्धा एक परमात्मा में स्थिर करायें।

गीता के आरम्भ में अर्जुन ने कहा, ''गोविन्द! कुल-धर्म सनातन है, जाति-धर्म शाश्वत है। ऐसा युद्ध करने से सनातन धर्म नष्ट हो जायेगा। वह लगा प्रश्न-परिप्रश्न करने! किन्तु अध्याय दस में जब भगवान ने अपनी विभूतियों का विस्तार से वर्णन किया कि ''सूर्य में तेज मैं हूँ, चन्द्रमा में शीतलता मैं हूँ, पृथ्वी में क्षमता मैं हूँ, तेजवानों का तेज मैं हूँ, इसलिए तू मेरी शरण आ।'' अर्जुन ने कहा, ''गोविन्द! आप जो कुछ कहते हैं, सत्य है किन्तु मैं उसे प्रत्यक्ष देखना चाहता हूँ।'' भगवान ने कहा, ''अर्जुन! तुम मेरे प्रिय भक्त हो, अनन्य सखा हो। ऐसा कुछ भी नहीं है जो मैं तुझे न दे सकूँ। लो देखो! सर्वत्र फैले मेरे तेज को देख! जगत् को एक स्थान पर खड़ा देख!'' भगवान दिखाते गये किन्तु अर्जुन को कुछ भी दिखायी नहीं दिया। भगवान सहसा रुक गये, अर्जुन को दृष्टि प्रदान की। अर्जुन ने देखा तो रोमांच हो आया, धनुष हाथ से खिसक कर गिर गया, ज्वर-सा हो आया। वह स्तुति करने लगा–

त्वमक्षरं परमं वेदितव्यं
त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम्।
त्वमव्ययः शाश्वतधर्मगोप्ता
सनातनस्त्वं पुरुषो मतो मे॥11/18॥

भगवन्! आप गोपनीय धर्म के रक्षक हैं, आप ही एकमात्र जानने योग्य देव हैं, आप सनातन पुरुष हैं। आरम्भ में यही अर्जुन कहता था कि कुल-धर्म

सनातन है। उसी अर्जुन ने जब देख लिया तब बोला, ''आप सनातन हैं। देवताओं के समूह आप में ही प्रवेश कर रहे हैं। वसु, रुद्र, आदित्य, वायु और अग्नि इत्यादि सब आश्चर्य से किंकर्त्तव्यविमूढ़ होकर खड़े आपके ऐश्वर्य को देख रहे हैं। अतः भगवन्!

पितासि लोकस्य चराचरस्य
त्वमस्य पूज्यश्च गुरुर्गरीयान्।
न त्वत्समोऽस्त्यभ्यधिकः कुतोऽन्यो
लोकत्रयेऽप्यप्रतिमप्रभाव॥11/43॥

आप गुरुओं के भी आदि गुरु हैं, पूजनीय हैं, अति पवित्र हैं। जिसकी कोई प्रतिमा नहीं–ऐसे अप्रतिम प्रभाव वाले आपके समान तीनों लोकों में दूसरा कोई नहीं है फिर अधिक कैसे होगा?

अतः भगवान प्रत्यक्ष दर्शन है। पुरोहित उन महापुरुषों के प्रतिनिधि हैं जिन्होंने उस भगवत्स्वरूप को प्राप्त किया था। वह उनकी वाणी दुहरा कर संस्कार डालते हैं, भाव जगाते हैं। एक प्रभु की आराधना का जहाँ बीजारोपण हुआ, सद्गुरु मिलेंगे। सद्गुरु के मिलते ही भगवान का रास्ता प्रशस्त हो जायेगा, आप उन्हें प्राप्त कर लेंगे। पूजा एक परमात्मा की ही करनी चाहिए। उस अविनाशी परमात्मा को प्राप्त करने के लिए–

तुम्ह तें अधिक गुरहिं जियँ जानी। सकल भायँ सेवहिं सनमानी॥

(मानस, 2/128/8)

भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं, उस अमृतमय परम ज्ञान को जानने के लिए किसी तत्त्वदर्शी की शरण में जा! भगवान बुद्ध ने कहा, '**तथागत**'– जो उस तत्त्व से अवगत हो, उसकी शरण जाओ।' पालि भाषा का तथागत और भगवान श्रीकृष्ण का तत्त्वदर्शी पर्याय ही तो हैं। इसी प्रकार भगवान महावीर ने कहा– हृदयस्थित, आत्मस्वरूप, ज्योतिर्मय को पाना है तो नमन करें अरिहन्त को, जिनके हृदय के शत्रु शांत हो गये हों। '**नमो सिद्धाणाम्**'–उस सिद्ध की शरण जाओ जिसने उस परम तत्त्व को विदित कर लिया, साध लिया।

'उवज्झायाणां' अर्थात् सच्चा उपदेश करने वाले उपाध्यायों, आचार्यों की शरण में जाओ। **'लोये सर्व साहूणां'**—लोक में समस्त सन्तों की शरण जाओ। मंगल का यही एक उपाय है और यही आपके कर्मकाण्ड का उद्देश्य है कि इन महापुरुषों की वाणी का जन-जन को बोध कराकर एक ब्रह्म में श्रद्धा स्थिर कराना चाहिए।

भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं–

तस्मादोमित्युदाहृत्य यज्ञदानतपःक्रियाः।
प्रवर्तन्ते विधानोक्ताः सततं ब्रह्मवादिनाम्॥17/24॥

अर्जुन! यज्ञ, दान, तप, संयम– समस्त मांगलिक क्रियाओं में आरम्भ से लेकर पूर्तिपर्यन्त 'ओम्' से ही क्रियायें आरम्भ होती हैं जिससे उस परमात्मा का भली प्रकार चिन्तन हो जाय। ॐ परमात्मा का नाम है। भगवान ने कहा, ''अक्षरों में ओंकार मैं हूँ। ॐ का जप कर, मेरे स्वरूप का ध्यान धर!'' अतः स्त्री-पुरुष सबको एक ओंकार का स्मरण करना चाहिए। पुरोहित और यजमान एक प्रभु के स्वरूप को हृदय में धारण करें कि वही सर्वशक्तिमान देदीप्यमान कण-कण में व्याप्त है। इस भावना से उसमें श्रद्धा स्थिर कर उसके नाम का जप करें–

त्वमेव माताश्च पिता त्वमेव
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव
त्वमेव सर्वं मम देव देव॥

जिसमें परमात्मा ही सर्वस्व हैं प्रभु-महिमा के ऐसे श्लोक पढ़े जायँ। कथा सुनते समय प्रभु के नाम का जप अनिवार्य है ही, शेष जीवन में भी निरन्तर चलता रहे। यह तो आयुपर्यन्त की शिक्षा है।

इस सन्दर्भ में मध्यकाल से ही एक भ्रान्ति चली आ रही है कि ओम् का जप गृहस्थ नहीं कर सकते, यह तो विरक्त जपते हैं। यह व्यर्थ की भ्रान्ति

है। अर्जुन पूर्णतः गृहस्थ था किन्तु भगवान ने कहा, ओम् का जप कर, ध्यान मेरा धर! यह भी भ्रान्ति है कि स्त्रियाँ ओम् नहीं जप सकतीं, किन्तु अध्यात्म दर्शन गीता में स्त्री-पुरुष का भेद नहीं है।

द्वाविमौ पुरुषौ लोके क्षरश्चाक्षर एव च।
क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते॥15/16॥

भगवान ने कहा, ''अर्जुन! संसार में पुरुष दो प्रकार का होता है क्षर और अक्षर। प्राणिमात्र का शरीर क्षर पुरुष है। शरीरों के होने के जब तक संस्कार चलते हैं, तब तक हर प्राणी क्षर पुरुष है। **'कूटस्थोऽक्षर उच्यते'**– मनसहित इन्द्रियाँ कूटस्थ हो जाती हैं तो वही प्राणी अक्षर पुरुष है। शरीर तो एक वस्त्र है, नर हो अथवा नारी! अतः आबाल-वृद्ध सबको पूर्ण श्रद्धा से बैठकर एक जैसी कथा श्रवण करनी चाहिए। यह **'लोक लाहु परलोक निबाहू' (मानस, 1/19/2)**– लोक में समृद्ध जीवन और परम श्रेय की प्राप्ति का साधन है। क्यों है?, कैसे है?–इसे जानने के लिए भगवान श्रीकृष्ण के श्रीमुख की वाणी गीता का अवलोकन करें। ध्यान कैसे धरें?, भजन की विधि क्या?–इसके लिए गीता-भाष्य 'यथार्थ गीता' का अनुशीलन करना होगा।

॥ ॐ ॥

॥ न्यास ॥

'नि' उपसर्ग तथा 'अस्' धातु से निष्पन्न न्यास शब्द के कई अर्थ हैं– स्थापित करना, समर्पण करना, त्यागना, धरोहर रखना, चिह्न बनाना, चित्रित करना इत्यादि।

न्यास, मुद्राएँ, यन्त्र, चक्र, मण्डल तांत्रिक पूजा के महत्त्वपूर्ण अंग हैं। प्राचीन ग्रन्थों में इन क्रियाओं का उल्लेख न होने तथा परवर्ती साहित्य में इनके प्रचुर वर्णन से विदित होता है कि ये क्रियाएँ बौद्ध धर्म की महायान शाखा विशेषतः वज्रयान से उद्भूत, पञ्च मकारों की साधना पर आधारित तंत्र ग्रन्थों से प्रभावित पुराणों द्वारा छठीं-सातवीं ईस्वी के पश्चात् प्रचलन में आयीं।

गरुड़ पुराण, नारदीय पुराण, अग्नि पुराण, भागवत पुराण, ब्रह्म पुराण, पद्म पुराण, मत्स्य पुराण, कालिका पुराण तथा देवीभागवत इत्यादि पुराणों में ॐ नमो नारायणाय, ॐ नमो भगवते वासुदेवाय इत्यादि मंत्रों के साथ कई प्रकार के न्यासों का वर्णन है, जैसे– हंस न्यास, प्रणवन्यास, मातृका न्यास, करन्यास, अंगन्यास, पीठन्यास इत्यादि।

हंस न्यास में '**हं पुरुषात्मने नमः**', '**सः प्रकृत्यात्मने नमः**', '**हंस प्रकृतिपुरुषात्मने नमः**' - कहा जाता है। मातृका न्यास में 'अ' से 'क्ष' तक 50 अक्षरों का न्यास शरीरांगों तथा सूक्ष्म शरीरस्थ षट्चक्रों के कमल दलों की संख्या के अनुसार किया जाता है।

प्रपंचसार और सौन्दर्यलहरी- जिन्हें महान् अद्वैतवादी आचार्य शंकर प्रणीत कहा जाता है (यद्यपि यह गौड़देशीय एक अन्य शंकर की रचना है) तथा अन्यान्य तंत्र ग्रन्थों में न्यास की विधि इस प्रकार बताई गई है- '**हृदय शिरसोः शिखायां कवचाक्ष्यस्त्रेषु सह चतुर्थीषु। नत्या, हुत्या च वषट् हुं वौषट् फटपदैः षडङ्ग विधि।**' अर्थात् हृदय, शिर, शिखा, कवच, अक्षि और अस्त्र के साथ चतुर्थी विभक्ति लगाकर क्रमशः नमः स्वाहा, वषट्, हुं,

वौषट् और फट् के प्रयोग से अंगन्यास होता है। उदाहरणार्थ- ॐ हृदयाय नमः, ॐ शिरसे स्वाहा, ॐ शिखायै वषट्, ॐ कवचाय हुं, ॐ नेत्रत्रयाय या नेत्रद्वयाय वषट्, ॐ अस्त्राय फट् – यह अंगन्यास में प्रणवन्यास है। इसी प्रकार इन अनुष्ठानों में बीज, शक्ति, कीलक, अर्गला इत्यादि की परिकल्पना भी शाक्त आगमों की देन है।

आदि धर्मशास्त्र गीता में समस्त सांसारिक सुख तथा लौकिक-पारलौकिक शाश्वत शान्ति की प्राप्ति के लिए एक ही नियत सरल विधि का उल्लेख है जिसमें एक परमात्मा के प्रति समर्पण, ॐ का जप, सद्गुरु के प्रति समर्पण तथा इन्द्रिय संयम जैसी क्रियायें मानव मात्र के लिए बतायी गई हैं तथा सावधान किया गया है कि **'बहुशाखा ह्यनन्ताश्च बुद्धयोऽव्यवसायिनाम्।'** (गीता, 2/41)– अर्जुन! अविवेकियों की बुद्धि अनन्त शाखाओं वाली होती है इसीलिये वे पूजा-पद्धति के नाम पर अनन्त क्रियाओं का विस्तार करते रहते हैं, शोभायुक्त वाणी में उसे व्यक्त भी करते हैं। उनके वाणी की छाप जिन-जिन के चित्त पर पड़ती है उनकी भी बुद्धि नष्ट हो जाती है, न कि वे कुछ पाते हैं।

अतः वेदी कैसी बनायी जाय?, जप कितनी संख्या में किया जाय?, माला किन अँगुलियों, पर्वों या मनकों से गिनी जाय?, परिकरों सहित देवी-देवताओं के कितने मण्डल और किन रंगों के बनाये जायँ?–इन बाह्य विधानों की सूक्ष्म से सूक्ष्मतर व्यवस्थाओं से एक परमात्मा का चिन्तन लुप्त हो जाता है, श्रद्धा बिखर जाती है, व्यवस्था ही प्रधान बन बैठती है।

अस्तु, विज्ञ पुरोहितगण को चाहिए कि एक परमात्मा में श्रद्धा का केन्द्रीयकरण करें-कराएँ, क्रियाओं में अनावश्यक विस्तार न करें प्रत्युत् धर्मशास्त्र गीता-पाठ को प्रोत्साहन दें। उसका यथार्थ आशय संस्कृत श्लोकों के साथ क्षेत्रीय भाषाओं में जन-जन को हृदयंगम करायें, अन्यथा जो शिखा धारण नहीं करते, हाथ-पैर से विकलांग हैं, उनके लिये अंगुष्ठादि करन्यास तथा हृदयादि अंगन्यास का क्या उपयोग है? ऐं, ह्रीं, क्लीं, हुं, फट् जैसे बीज

मंत्रों के प्रयोग से रोगशान्ति, वशीकरण, स्तम्भन, विद्वेषण, उच्चाटन तथा मारण जैसी अभिचार क्रियाओं से वाममार्गीय कौल परम्परा ही पनपेगी। लोक में अनादृत तंत्रों को आलम्बन प्रदान करने के लिए कुछ उपनिषदें भी बनीं, महाभारत के विराट पर्व और भीष्म पर्व में प्रक्षेप भी किये गये किन्तु संयम प्रधान भारतीय संस्कृति ने भोगवादी प्रतिक्रियाओं को कभी भी आत्मसात् नहीं किया।

गीता ही आपका धर्मशास्त्र है। यह मनुष्य का आदि धर्मशास्त्र है, मानव के प्रादुर्भाव के पूर्व ही जिसका प्रादुर्भाव हुआ है। स्वयं पद्मनाभ श्री भगवान के श्रीमुख से यह प्रसारित हुई है। तब मनुष्य निर्मल था। अपौरुषेय वाणी श्रीमद्भगवद्गीता उसके साथ उतरी थी। तभी तो–

गीता सुगीता कर्तव्या किमन्यैः शास्त्रसंग्रहैः।
या स्वयं पद्मनाभस्य मुखपद्माद्विनिःसृता॥

(महाभारत, भीष्म पर्व, 43/1)

गीता के चतुर्थ अध्याय के प्रथम श्लोक में है कि मैंने इस अविनाशी योग को कल्प के आदि में सूर्य से कहा, सूर्य ने आदि मनु से कहा। मनु ने इसे अपनी स्मृति में धारण किया। पूर्वजों की बुद्धि कितनी विशाल थी कि पूरा का पूरा शास्त्र स्मृति पटल में धारण कर लिया। यही है आदि मनुस्मृति।

गीता के अनुसार, एक आत्मा ही सत्य है, विधाता और उससे उत्पन्न सृष्टि नश्वर है, शरीर नाशवान् है। गीता (18/40) में है कि पृथ्वी में, स्वर्ग अथवा देवताओं में भी ऐसा कोई प्राणी नहीं जो प्रकृति से उत्पन्न तीनों गुणों से रहित हो अर्थात् देवता भी तीनों गुणों के अन्तर्गत हैं। यावन्मात्र जगत् क्षणभंगुर, मरने-जीने वाला है, तीनों गुणों का विकार है, नश्वर है। ऐसी परिस्थिति में हम अभय पद, नित्य, तत्त्व, सनातन पुरुष को कैसे प्राप्त करें?– उस नियत विधि का नाम यज्ञ है। वस्तुतः योगविधि यज्ञ है, जिसमें बहुत से योगी श्वास में प्रश्वास का हवन करते हैं, बहुत से प्रश्वास को श्वास में हवन करते हैं। गीता में चौदह प्रकार से यज्ञ बताया गया है।

इस योगविधि यज्ञ को क्रियान्वित करना कर्म कहलाता है। कर्म माने आराधना। **'किं कर्म यत्प्रीति करं मुरारे'** (प्रश्नोत्तरी, 31), **'यज्ञार्थात्कर्मणो'** (गीता, 3/9)– सृष्टि में कर्म क्या है? उन परमात्मा के चरण कमलों में प्रीति, श्रद्धा। प्रीति कैसे हो? प्रीति किससे करें? इसी का बोध कराने के लिए कर्मकाण्ड की रचना हुई। जीवन की सुख-दुःख की घड़ियों में से महापुरुषों ने कुछ घटनाओं (काण्ड) का चयन किया। इन अवसरों पर समाज एकाग्रचित और संगठित होता है, निर्णय पाने का अभिलाषी होता है। ऐसे अवसरों पर समाज में एक परमात्मा के संस्कारों का बीजारोपण महापुरुषों ने पुरोहितों के माध्यम से किया।

शिशु का बीजारोपण गर्भाधान, जन्म, अन्नप्राशन, मुण्डन, नामकरण, गृह-निर्माण हेतु शिलान्यास, घर बन गया तो गृह प्रवेश, कहीं उपनयन तो कहीं विवाह जीवन की विशिष्ट घटनाएँ थीं। नब्बे-सौ साल में कोई बुजुर्ग चल बसे वह भी एक अंतिम घटना है, उनका अंतिम संस्कार दिवंगत आत्मा की शान्ति तथा पूर्वजों के प्रति श्रद्धा निवेदन का पर्व वार्षिकी! ये घटनाएँ होती ही रहती हैं। ऐसे प्रत्येक काण्ड या घटना पर मनुष्य मात्र को जिस उद्देश्य के लिए दुर्लभ मानव तन मिला है, उस कर्तव्य का बोध कराना कर्मकाण्ड है जिससे शरीर रहते हुए मनुष्य अपने लक्ष्य आत्म-साक्षात्कार के पथ पर अग्रसर हो जाय। **'तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत। तत्प्रसादात्परां शान्तिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम्॥'** (18/62) जिसकी कृपा-प्रसाद से परम शान्ति, अनन्त जीवन और शाश्वत धाम प्राप्त हो जाय।

अयुक्त तथा चंचल मन को एकाग्र करने में षोडशोपचार पूजन के अतिरिक्त परम्परागत तथा हृदयादि अंगन्यास का भी किंचित् उपयोग है जिसका आशय मात्र इतना है कि अपने हृदय एवं मन-मस्तिष्क में एक परमात्मा को ही स्थापित करना है, अपने हाथों तथा इन्द्रिय समुदाय को एक प्रभु की राह में संचालित करना है। जीवन में आँखें न दूसरा देखें, न कान दूसरा कुछ सुनें, न मन दूसरा कोई संकल्प करे और न बुद्धि दूसरा कोई निर्णय ले।

इसीलिये आरंभ से ही मानव दृष्टिकोण को, श्रद्धा को एक परमात्मा में न्यस्त कर दें, स्थिर कर दें, मन और इन्द्रियाँ उन प्रभु को अर्पित कर दें। प्रत्येक व्यक्ति (जिसने भी जन्म लिया है) परम श्रेय का पथिक है। समर्पण से उनके जीवन में कभी भटकाव नहीं आयेगा क्योंकि आरम्भ से ही उसे ध्येय का पूरा ज्ञान हो गया है, ध्येय पर दृष्टि स्थिर कर दी गयी है।

अतः कर्मकाण्ड के प्रत्येक अवसर पर संपूर्ण गीता या उसके किसी अंश के पाठ से पूर्व उसका प्रस्ताव या परिचय करन्यास के माध्यम से किया जाता है–

(1) ॐ अस्य श्रीमद्भगवद्गीता माला मंत्रस्य भगवान् वेदव्यास ऋषिः।

पहले सब श्रुतज्ञान था। लोग सुनते थे और मस्तिष्क में स्मरण रखते थे इसलिये शास्त्र को स्मृति भी कहते थे। वेदव्यास जी ने इस परम्परा में सुधार कर उस ज्ञान को लिपिबद्ध कर दिया। इन सबमें से उन्होंने गीता को ही शास्त्र का सम्मान दिया।

गीता मंत्रों की एक माला है। एक भी अनावश्यक सूत्र इसमें नहीं है। महर्षि जी ने इन्हें क्रमबद्ध पिरोया है। यह संस्कृत के अनुष्टुप छन्द में है, जिसमें हर आठ अक्षरों के पश्चात् अर्द्ध विराम तथा दूसरे आठ वर्णों के पश्चात् पूर्ण विराम का क्रम है।

(2) श्रीकृष्णः परमात्म देवताः।

भगवान श्रीकृष्ण परमदेव परमात्मा हैं। एक परमात्मा ही सत्य है। वही देवता है।

न्यास का आरंभ बीजारोपण से होता है कि मानव मन में बीज-संस्कार कौन-सा डालें? कैसे डालें?

(3) नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः।
उभयोरपि दृष्टोऽन्तस्त्वनयोस्तत्त्वदर्शिभिः॥ (2/16)

– इति बीजम्।

अर्जुन! असत्य का अस्तित्व नहीं है, उसे रोका नहीं जा सकता और सत्य वस्तु का तीनों कालों में अभाव नहीं है, उसे मिटाया नहीं जा सकता। परमात्मा ही सत्य है, शाश्वत है, सनातन है, अपरिवर्तनशील है। वही आपका मूल बीज है।

भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं–

(4) सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज। (18/66)

– इति शक्तिः।

सम्पूर्ण धर्मों को त्यागकर एकमात्र मेरी शरण में हो जाओ। यही इस जीव की शक्ति है।

(5) अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः। (18/66)

– इति कीलकम्।

भगवान कहते हैं कि ऐसे समर्पित भक्त की जिम्मेदारी मैं ले लेता हूँ। अर्जुन! तू मेरी शरण हो जा, मैं तुझे सम्पूर्ण पापों से मुक्त कर दूँगा इसलिए शोक मत कर। इस प्रकार भगवान ने सारे पापों को कील दिया, निरुद्ध कर दिया।

प्रश्न उठता है कि हम हाथों का प्रयोग किस दिशा में करें अर्थात् पुरुषार्थ की दिशा कौन? लक्ष्य क्या हो?

(6) नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः। (2/23)

ॐ अंगुष्ठाभ्यां नमः।

जिसे न शस्त्र काट सकते हैं, न अग्नि जला सकती है, ॐ जिसका वाचक है उस परमात्मा का मैं अंगुष्ठा उंगली पर आवाहन करता हूँ, नमन करता हूँ।

(7) न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः। (2/23)

ॐ तर्जनीभ्यां नमः।

उसे न जल गीला कर सकता है, न वायु सुखा सकता है। उस ॐ स्वरूप परमात्मा को तर्जनी पर स्थापित करता हूँ, नमन करता हूँ।

(8) अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्य एव च। (2/24)

ॐ मध्यमाभ्यां नमः।

उसे शस्त्र नहीं काट सकता, अग्नि नहीं जला सकती, जल आर्द्र नहीं कर सकता, वायु सुखा नहीं सकता, उस आत्मा की शरण जाओ। ॐ स्वरूप उस परमात्मा को मध्यमा अंगुली पर विराजमान करें, नमन करें।

(9) नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः। (2/24)

ॐ अनामिकाभ्यां नमः।

यह आत्मा नित्य, सर्वव्यापी, अचल स्थिर रहने वाला और यही सनातन है। इस सनातन ॐ स्वरूप परमात्मा का अनामिका पर आवाहन करें, नमन करें।

(10) अव्यक्तोऽयमचिन्त्योऽयमविकार्योऽयमुच्यते।
तस्मादेवं विदित्वैनं नानुशोचितुमर्हसि॥ (2/25)

ॐ कनिष्ठिकाभ्यां नमः।

यह आत्मा अव्यक्त है, अचिन्त्य है, अविकारी है। अतः इन प्रभु में चित्त का निरोध करें। इस प्रकार ॐ स्वरूप परमात्मा का स्थापन कनिष्ठिका पर करें, परमात्मा को नमन करें।

(11) पश्य मे पार्थ रूपाणि शतशोऽथ सहस्त्रशः।
नानाविधानि दिव्यानि नानावर्णाकृतीनि च॥ (11/5)

ॐ करतल करपृष्ठाभ्यां नमः।

पार्थ! मेरे सैकड़ों तथा हजारों नाना प्रकार के और नाना वर्ण तथा आकृति वाले दिव्य स्वरूप को देख! हाथ की हथेली और उसके पृष्ठ भाग पर ॐ स्वरूप परमात्मा को नमन!

॥ अथ हृदयादि न्यास ॥

अविनाशी उन परमात्मा के चरणों को हृदय में धारण करना हृदयन्यास है।

1. **नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।** (2/23)

ॐ इति हृदयाय नमः।

जिसे शस्त्र नहीं काट सकते, आग नहीं जला सकती, ऐसे सर्वव्याप्त प्रभु का हृदय में आवाहन करें, उन्हें नमन करें।

2. **न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः।** (2/23)

ॐ इति शिरसे स्वाहा।

जिन्हें जल गीला नहीं कर सकता, वायु सुखा नहीं सकता, ऐसे अपरिवर्तनशील अविनाशी आत्मा को शिर से नमन करें।

3. **अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्य एव च।** (2/24)

ॐ इति शिखायै वषट्।

जिसे शस्त्र काट नहीं काट सकते, अग्नि नहीं जला सकती, पानी गीला नहीं कर सकता– लक्ष्य उस परमात्मा का शीर्ष पर आवाहन करें, ॐ स्वरूप परमात्मा को नमन करें।

4. **नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः।** (2/24)

ॐ इति कवचाय हुं।

यह आत्मा नित्य है, सर्वव्यापी है, अचल और सनातन है। यही आपका कवच है, रक्षक है। इस परमात्मा से अपने शरीर को आच्छादित कर लें। उसे नमन करें।

5. **पश्य मे पार्थ रूपाणि शतशोऽथ सहस्त्रशः।** (11/5)

ॐ इति नेत्रत्रयाय वौषट्।

अर्जुन! मेरे अनन्त प्रकार के हजारों स्वरूपों को देख! सर्वत्र इष्ट की विद्यमानता का अनुभव करें। नेत्रों का स्पर्श कर ॐ स्वरूप उन परमात्मा को नेत्रों में नमन करें। तृतीय ज्ञान-नेत्र की जागृति के लिए भजन करें जो श्रद्धा और समर्पण के साथ लक्ष्य पर दृष्टि रखकर चलने से ही खुलती है।

6. **तस्मात्त्वमुत्तिष्ठ यशो लभस्व**
जित्वा शत्रून्भुङ्क्ष्व राज्यं समृद्धम्।
मयैवैते निहताः पूर्वमेव
निमित्तमात्रं भव सव्यसाचिन्॥ (11/33)

ॐ इति अस्त्राय फट्।

इसलिए अर्जुन! तू युद्ध के लिए खड़ा हो जा। ये शूरवीर मेरे द्वारा पहले से ही मारे हुए हैं। सव्यसाचिन्! तू केवल निमित्त मात्र बन। खड़ा भर रह। विजय तुम्हारी होगी। भगवान् का यह आश्वासन अस्त्र की तरह विकारों का संहार करे। ॐ स्वरूप उन परमात्मा का अस्त्र रूप में नमन करें।

सब मिलाकर न्यास एक परमात्मा में समर्पण है। इसीलिए–

7. **श्रीकृष्ण प्रीत्यर्थे पाठे वा पूजने विनियोगः।**

एक परमात्मा श्रीकृष्ण के चरणों में अटूट प्रीति के लिए ही पाठ अथवा पूजन में इस न्यास के प्रयोग का विधान है।

॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

मंगल पाठ (स्वस्तिवाचन)

(अपने अस्तित्व के लिए मंगलपाठ)

यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः।
तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम॥ (18/78)

राजन्! जहाँ योगेश्वर श्रीकृष्ण और ध्यान को धारण करने वाला महात्मा अर्जुन अर्थात् अनुरागी पथिक है, वहीं पर श्रीः, विजय, विभूति और वहीं अचल नीति है। यही वह सर्वांगीण मंगल है।

श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः।
ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाधिगच्छति॥ (4/39)

श्रद्धावान्, तत्पर तथा संयतेन्द्रिय पुरुष ही ज्ञान प्राप्त कर पाता है। ज्ञान को प्राप्त कर वह तत्क्षण परमशान्ति को प्राप्त हो जाता है। जिसके पश्चात् कुछ भी पाना शेष नहीं रहता। यही शाश्वत शान्ति, परम मंगल है।

ॐ

।। अथ षोडशोपचार पूजन-पद्धतिः।।

नोट– यदि आप चाहें तो गीता के साथ पुरुष-सूक्त की ऋचायें भी पढ़ सकते हैं। दोनों का सन्देश एक ही है–परमात्मा के प्रति समर्पण!

ध्यानम्–

त्वमक्षरं परमं वेदितव्यं
त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम्।
त्वमव्ययः शाश्वतधर्मगोप्ता
सनातनस्त्वं पुरुषो मतो मे।। (11/18)

ध्यानम् समर्पयामि।

भगवन्! आप जानने योग्य परम अक्षर अर्थात परमात्मा हैं। आप इस जगत् के परम आश्रय हैं। आप शाश्वत धर्म के रक्षक हैं तथा आप अविनाशी सनातन पुरुष हैं– ऐसा मेरा मत है। अतः इसके अतिरिक्त किस देवता की हवि द्वारा पूजा करें? प्रभो! मन, क्रम, वचन से हम आपके प्रति समर्पित हैं।

1. आवाहनम्–

सर्वतः पाणिपादं तत्सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम्।
सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति।। (13/13)

आवाहनम् समर्पयामि।

वह ब्रह्म सब ओर से हाथ-पैर वाला, सब ओर से नेत्र, सिर और मुखवाला तथा सब ओर से श्रोतवाला (सुनने वाला) है, क्योंकि वह संसार

में सबको व्याप्त करके स्थित है। वह प्रभु हमें दर्शन दें, सदा हमारे साथ रहें तथा हमारी रक्षा करें।

✦ ✦ ✦

ॐ सहस्त्रशीर्षाः पुरुषः सहस्त्राक्षः सहस्त्रपात्।
स भूमिं ँ सर्वतस्पृत्वात्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम्॥1॥

वह परम पुरुष सहस्त्र अर्थात् अनन्त मस्तक, अनन्त नेत्र और अनन्त चरणवाला है। वह विश्व की समस्त भूमि को सब ओर से व्याप्त करके पंच स्थूल भूत और पंच सूक्ष्म (रूप, रस, गन्ध, शब्द और स्पर्श)- इन्हीं दस के पैमाने में निवास करता है अर्थात् हृदयदेश में स्थित है। ऐसे प्रभु की मैं कामना करता हूँ। उनका आवाहन करें, पुकारें। पूजा एक परमात्मा की।

2. आसनम्—

शुचौ देशे प्रतिष्ठाप्य स्थिरमासनमात्मनः।
नात्युच्छ्रितं नातिनीचं चैलाजिनकुशोत्तरम्॥ (6/11)

आसनम् समर्पयामि।

शुद्ध भूमि में कुश, मृगछाला या वस्त्र बिछाकर आसन को न अति ऊँचा न अति नीचा, स्थिर स्थापित करें।

✦ ✦ ✦

ॐ पुरुष एवेदं ँ सर्वं यद् भूतं यच्च भाव्यम्।
उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति॥2॥

भूत, भविष्य और वर्तमान- यह सब वह परम पुरुष ही हैं। वही अमरत्व के स्वामी हैं। ईश्वरीय चिन्तनरूपी अन्न से वह बढ़ते हैं। सामान्य अन्न शरीर का पोषण करता है किन्तु आत्मा का पोषक अन्न चिन्तन है, जिससे हृदयस्थ ईश्वर बढ़ता है। वस्तुतः परमात्मा घटता-बढ़ता नहीं, किन्तु साधक के लिए ऐसा ही है। साधक के लिए अनुकूलता-प्रतिकूलता ही उनका बढ़ना-घटना है। आसन लगायें। मन का स्थिरीकरण ही आसन है।

3. पाद्यम्–

बहिरन्तश्च भूतानामचरं चरमेव च।
सूक्ष्मत्वात्तदविज्ञेयं दूरस्थं चान्तिके च तत्।। (13/15)

पाद्यम् समर्पयामि।

वह ब्रह्म सभी जीवधारियों के बाहर-भीतर परिपूर्ण है। चर और अचर रूप भी वही है। सूक्ष्म होने से वह दिखाई नहीं पड़ता, अविज्ञेय है, मन-इन्द्रियों से परे, अति समीप और दूर भी वही है।

✦ ✦ ✦

ॐ एतावानस्य महिमातो ज्यायांश्च पूरुषः।
पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि।।3।।

भूत, भविष्य और वर्तमान से सम्बद्ध यह समस्त ब्रह्माण्ड इन परमपुरुष का वैभव है और वह इन सबसे भी श्रेष्ठ है। यह सब आकाश, पृथ्वी आदि चराचर जगत् इस परमात्मा का एक अंश है तथा तीन अंश अमृत और ज्योतिस्वरूप है। अतः वही एक धारण करने योग्य है, अन्य नहीं। पैर धुलायें।

4. अर्घ्यम्–

यथा सर्वगतं सौक्ष्म्यादाकाशं नोपलिप्यते।
सर्वत्रावस्थितो देहे तथात्मा नोपलिप्यते।। (13/32)

अर्घ्यम् समर्पयामि।

जिस प्रकार सर्वत्र व्याप्त हुआ आकाश सूक्ष्म होने के कारण लिप्त नहीं होता, ठीक वैसे ही सर्वत्र देह में स्थित हुआ भी आत्मा गुणातीत होने के कारण देह के गुणों से लिप्त नहीं होता।

✦ ✦ ✦

ॐ त्रिपादूर्ध्व उदैत् पुरुषः पादोऽस्येहाभवत्पुनः।
ततो विष्वङ् व्यक्रामत् साशनानशने अभि॥4॥

उपर्युक्त तीन अंशोंवाला परमपुरुष उत्तम मुक्तिस्वरूप है, जो संसार से पृथक् प्रकट होता है। उनके एक चरण से ही सम्पूर्ण जगत् उत्पन्न होता है और वही सम्पूर्ण जड़-चेतन में व्याप्त है। मुक्ति उन्हीं के पास है। अर्घ दें, मुँह धुलावें। मुख से इन्हीं परमात्मा के पवित्र नाम ॐ का उच्चारण करें। इससे आसुरी वृत्ति शान्त हो जायेगी, दैवी वृत्ति प्रवाहमान हो जायेगी, भगवान की चर्चा आरम्भ हो जायेगी, मुख धुल जायेगा। अतः अर्घ्य देते समय इस प्रकार स्मरण करें।

5. आचमनीयम्–

यावानर्थ उदपाने सर्वतः सम्प्लुतोदके।
तावान्सर्वेषु वेदेषु ब्राह्मणस्य विजानतः॥ (2/46)

आचमनम् समर्पयामि।

सब ओर से परिपूर्ण जलाशय को प्राप्त होने पर मनुष्य का छोटे जलाशय से जितना प्रयोजन रहता है, अच्छी प्रकार ब्रह्म को जानने वाले ब्राह्मण का वेदों से उतना ही प्रयोजन रहता है। यही आचमन है। **'निरंजन माला घट में फिरै दिन रात'** फिर यह क्रम चलता रहे। इसके अतिरिक्त अन्य चिन्तन न आये।

✦ ✦ ✦

ॐ ततो विराडजायत विराजो अधि पूरुषः।
स जातो अत्यरिच्यत पश्चाद् भूमिमथो पुरः॥5॥

उन्हीं परमपुरुष से विराट् ब्रह्माण्ड पैदा हुआ और वही इस विराट् के अधिपुरुष हुए। वे उत्पन्न होकर अत्यधिक प्रकाशित हुए। पीछे उन्हीं ने भूमि तथा शरीर उत्पन्न किया। अतः उन परमात्मा को जानना चाहिए। उनका सतत चिन्तन ही आचमन है। आचमन करायें।

6. स्नानम्–

अविभक्तं च भूतेषु विभक्तमिव च स्थितम्।
भूतभर्तृ च तज्ज्ञेयं ग्रसिष्णु प्रभविष्णु च॥ (13/16)

स्नानम् समर्पयामि।

अविभाज्य होकर भी वह सम्पूर्ण चराचर भूतों में अलग-अलग के सदृश प्रतीत होता है। वह जानने योग्य परमात्मा समस्त भूतों को उत्पन्न करनेवाला, भरण-पोषण करनेवाला और अन्त में संहार करनेवाला है। यहाँ बाह्य और आन्तरिक दोनों भावों की ओर संकेत किया गया है। जैसे–बाहर जन्म और भीतर जागृति, बाहर पालन और भीतर योगक्षेम का निर्वाह, बाहर शरीर का परिवर्तन और भीतर सर्वस्व का विलय अर्थात् भूतों की उत्पत्ति के कारणों का लय और उस लय के साथ ही अपने स्वरूप को प्राप्त हो जाता है। यह सब उसी ब्रह्म के लक्षण हैं। अतः उसी परमात्मा को हृदय में धारण करें। इससे हृदय की मलिनता दूर होगी। यही वास्तविक स्नान है।

✦ ✦ ✦

ॐ तस्माद्यज्ञात् सर्वहुतः सम्भृतं पृषदाज्यम्।
पशून्ताँश्चक्रे वायव्यानारण्यान् ग्राम्याश्च ये॥6॥

जिसमें सब कुछ हवन कर दिया गया था, ऐसे उस यज्ञ से प्रशस्त घृत उत्पन्न हुआ, आविष्कार हुआ। उस परमपुरुष ने यज्ञ से ही वायु में रहने वाले, ग्राम में रहने वाले, वन में रहने वाले तथा दूसरे पशुओं को उत्पन्न किया। सबमें उसी परमपुरुष का प्रकाश है। उसे जानो। स्नान करायें।

7. वस्त्रम्–

पिताहमस्य जगतो माता धाता पितामहः।
वेद्यं पवित्रमोङ्कार ऋक्साम यजुरेव च॥ (9/17)

वस्त्रम् समर्पयामि।

अर्जुन! मैं ही सम्पूर्ण जगत् का 'धाता' अर्थात् धारण करनेवाला, 'पिता' अर्थात् पालन करनेवाला, 'माता' अर्थात् उत्पन्न करनेवाला, 'पितामहः' अर्थात् मूल उद्‌गम हूँ, जिसमें सभी प्रवेश पाते हैं और जानने योग्य पवित्र ओंकार अर्थात् 'अहं आकार इति ओंकारः'– वह परमात्मा मेरे स्वरूप में है। 'सोऽहं, तत्त्वमसि' इत्यादि एक दूसरे के पर्याय हैं, ऐसा जानने योग्य स्वरूप मैं ही हूँ। 'ऋक्' अर्थात् सम्पूर्ण प्रार्थना, 'साम' अर्थात् समत्व दिलानेवाली प्रक्रिया, 'यजुः' अर्थात् यजन की विधि-विशेष भी मैं ही हूँ। योग-अनुष्ठान के उक्त तीनों आवश्यक अंग मुझसे होते हैं। अतः मस्तिष्क में इन्हीं परमात्मा के विचारों का निरन्तर चिन्तन चलता रहे। वस्त्र अर्पित करें।

✦ ✦ ✦

ॐ तस्माद्यज्ञात्सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे।
छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद् यजुस्तस्मादजायत॥7॥

जिसमें सब कुछ हवन कर दिया जाता है, उसी यज्ञ से ऋग्वेद और सामवेद प्रकट हुए, उसी से अथर्ववेद प्रकट हुआ। उसी से यजुर्वेद अर्थात् यजन करने वाले मंत्रों की भी उत्पत्ति हुई। इस प्रकार वेदों का भी मूल यज्ञ है। यज्ञ द्वारा उस परमपुरुष को जानना चाहिए। वस्त्र समर्पित करें।

8. यज्ञोपवीतम्–

गतिर्भर्ता प्रभुः साक्षी निवासः शरणं सुहृत्।
प्रभवः प्रलयः स्थानं निधानं बीजमव्ययम्॥ (9/18)

यज्ञोपवीतम् समर्पयामि।

हे अर्जुन! 'गतिः' अर्थात् प्राप्त होने योग्य परमगति, 'भर्ता'– भरण-पोषण करनेवाला, सबका स्वामी, 'साक्षी' अर्थात् द्रष्टा-रूप में स्थित सबको जाननेवाला, सबका वासस्थान, शरण लेने योग्य, अकारण प्रेमी मित्र, उत्पत्ति और प्रलय अर्थात् शुभाशुभ संस्कारों का विलय तथा अविनाशी कारण मैं ही हूँ। अर्थात् अन्त में जिनमें प्रवेश मिलता है, वे सारी विभूतियाँ मैं ही हूँ।

✦ ✦ ✦

ॐ तस्मादश्वा अजायन्त ये के चोभयादतः।
गावो ह जज्ञिरे तस्मात्तस्माज्जाता अजावयः॥8॥

उसी परमपुरुष से घोड़े उत्पन्न हुए। इनके अतिरिक्त दोनों ओर दाँतों वाले, गाय, बकरी इत्यादि पशु-पक्षी उत्पन्न हुए। सबकी उत्पत्ति उसी परमात्मा से है। उस एकमात्र परमेश्वर पर विश्वास लाना चाहिए अन्य कोई पूजनीय नहीं है। यज्ञोपवीत अर्पित करें। यज्ञ से जिसके सारे कर्म दग्ध हो चुके हैं, वह परम पवित्र हो जाता है। फिर उसे आवागमन में नहीं आना पड़ता। यही यज्ञोपवीत की वास्तविकता है।

9. गन्धम्–

दिव्यमाल्याम्बरधरं दिव्यगन्धानुलेपनम्।
सर्वाश्चर्यमयं देवमनन्तं विश्वतोमुखम्॥ (11/11)

गन्धम् समर्पयामि।

दिव्य माला और वस्त्रों को धारण किये हुए, दिव्य गन्ध का अनुलेपन किये हुए, सब प्रकार आश्चर्यों से युक्त सीमारहित विराट् स्वरूप परमदेव को देखा।

✦ ✦ ✦

ॐ तं यज्ञं बर्हिषि प्रौक्षन् पुरुषं जातमग्रतः।
तेन देवा अजयन्त साध्या ऋषयश्च ये॥9॥

'**देवा**' अर्थात् दैवी सम्पद् को हृदय में उतारने वाले साध्य, '**साध्या**'– परमात्मा के लिए साधन करने वाले योगाभ्यासी तथा '**ऋषयः**' अर्थात् मन का निरोध करने वाले ज्ञानी लोगों ने शरीरस्थ पुरुष को साधनों के द्वारा विशुद्ध किया, उसे अग्रजन्मा अर्थात् अग्रगण्य बनाया, पुरुषोत्तम बनाया। उसी रीति से यजन करके, आत्म-शोधन करके सभी ने मोक्ष प्राप्त किया। आपको भी यही करना चाहिए। आप ईश्वरीय गुणों से ओत-प्रोत हो जायेंगे। गन्ध चन्दनादि अर्पित करें।

10. पुष्पम्–

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः॥ (9/26)

पुष्पम् समर्पयामि।

भक्ति का आरम्भ यहीं से है कि पत्र, पुष्प, फल, जल इत्यादि जो कोई मुझे भक्तिपूर्वक अर्पित करता है, मन से अर्पण करनेवाले उस भक्त का वह सब मैं खाता हूँ अर्थात् स्वीकार करता हूँ।

✦ ✦ ✦

ॐ यत्पुरुषं व्यदधुः कतिधा व्यकल्पयन्।
मुखं किमस्यासीत् किं बाहू किमूरू पादा उच्येते॥10॥

जिस पुरुष का विधान किया गया, विचार- कुशल पुरुषों ने उस परमपुरुष की कल्पना कितने प्रकार से की, इसका मुख क्या था, भुजाएँ क्या थीं, जंघा क्या था, और पैर क्या था? अब यह बताया जाता है। माल्यार्पण करें।

11. धूपम्–

सर्वाणीन्द्रियकर्माणि प्राणकर्माणि चापरे।
आत्मसंयमयोगाग्नौ जुह्वति ज्ञानदीपिते॥ (4/27)

धूपम् आघ्रापयामि।

इन्द्रियों की सम्पूर्ण चेष्टाओं को, प्राणों की समस्त क्रियाओं को ज्ञान से प्रकाशित परमात्मा- स्थितिरूपी, आत्मसंयमरूपी योगाग्नि में हवन करते हैं। इसी चिन्तनधारा में वृत्ति को सब ओर से समेटकर लगाना ध्यान है। अतः धूप दें।

✦ ✦ ✦

ॐ ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः।
उरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत॥11॥

ब्राह्मण इसका मुख था। क्षत्रिय दोनों भुजाएँ बना। इसकी जो दोनों जंघाएँ थीं, वही वैश्य हुईं और पैरों से शूद्र जन्मा। धूप दें।

(**विशेष–** ध्यान देने की बात है कि केवल शूद्र ही जन्मता है क्योंकि उत्पत्तिकाल में भजन ही शूद्र स्तर का होता है। वैश्य, क्षत्रिय और ब्राह्मण स्तर विकास से हो जाते हैं। जो भजन नहीं करता वह तो शूद्र भी नहीं है, वह जड़-जीव मात्र है। साधन की इन चार श्रेणियों को पार कर लेने पर साधक ब्राह्मण भी नहीं रह जाता। **'न ब्राह्मण न क्षत्रिय न वैश्यो न शूद्रः चिदानन्द रूपो शिवो केवलोऽहम्'** की स्थिति आ जाती है।)

इन सोपानों की नकल करके समाज में चार जातियाँ भी इन नामों से बन गयी हैं और इसी प्रथा की दुहाई देकर शूद्र को सबसे निकृष्ट माना जाता है, क्योंकि वह चरण से पैदा हुआ। विचारणीय है कि परम पुरुष तो सर्वत्र हाथ-पैर और मुँह वाला था। जहाँ पैर था क्या वहाँ सिर नहीं था? एक ही पाद में तो सम्पूर्ण सृष्टि है तब तो सभी शूद्र हो गए। जिन चरणों से पतित पावनी गंगा निकली उसी चरण से निकला शूद्र इतना अपवित्र कि छू दे तो धर्म नष्ट हो जाय, परम पुरुष ही मर जाय, कितनी भ्रान्ति है।

वास्तविकता को छिपाकर स्मृतिकार कहते हैं कि जन्म से तो सभी शूद्र होते हैं। हाँ, संस्कार करने से ब्राह्मण बन जाते हैं। और संस्कार के नाम पर यज्ञोपवीत पहनाकर दो-चार मंत्र पढ़ा देते हैं। यदि इसी प्रकार ब्राह्मण बनते हैं तो सबको ब्राह्मण बनाकर अपनी संख्या क्यों नहीं बढ़ा लेते! वस्तुतः वे संस्कार भी नहीं हैं।

संस्कार का आशय है- **'स अंश आकार'–** उस परमात्मा का आंशिक आकार डाल देना, उसकी चाह पैदा कर देना। इतने के लिए ही कर्मकाण्ड की सार्थकता है। अस्तु, वेद के नाम पर मानव-मानव में दरार न डालें। परमात्मा सबमें है और सभी इस दृष्टि से समान हैं, सभी उसे पाने के अधिकारी हैं।

12. दीपम्–

तेषामेवानुकम्पार्थमहमज्ञानजं तमः।
नाशयाम्यात्मभावस्थो ज्ञानदीपेन भास्वता॥ (10/11)

दीपम् दर्शयामि।

उन भक्तों के ऊपर पूर्ण अनुग्रह करने के लिए मैं उनकी आत्मा से अभिन्न खड़ा होकर (रथी होकर) अज्ञान से उत्पन्न हुए अंधकार को ज्ञानरूपी दीपक के द्वारा प्रकाशित कर नष्ट करता हूँ। जो मेरा चिन्तन करता है, गुणानुवाद करता है, एक परमात्मा के प्रति समर्पित होता है, उसमें अपने आप यह क्षमता आ जाती है, भगवान रथी हो जाते हैं। भजन एक जागृति है।

✦ ✦ ✦

ॐ चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्यो अजायत।
श्रोत्राद्वायुश्च प्राणश्च मुखादग्निरजायत॥12॥

उसी परम पुरुष के मन से चन्द्रमा उत्पन्न हुआ, नेत्रों से सूर्य प्रकट हुआ, कानों से वायु और प्राण तथा मुख से अग्नि उत्पन्न हुई। दीप दिखायें।

13. नैवेद्यम्–

मत्तः परतरं नान्यत्किञ्चिदस्ति धनञ्जय।
मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव॥ (7/7)

नैवेद्यम् जलं च निवेदयामि।

धनंजय! मेरे सिवाय किंचिन्मात्र भी दूसरी वस्तु नहीं है। यह सम्पूर्ण जगत् सूत्र में मणियों के सदृश मेरे में गुँथा हुआ है। अतः जो परमात्मा सृष्टि के कण-कण में व्याप्त है, उसी के प्रति समर्पण करें। नैवेद्य तथा जल अर्पित करें।

✦ ✦ ✦

ॐ नाभ्या आसीदन्तरिक्ष॑ शीर्ष्णो द्यौः समवर्तत।
पद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रात्तथा लोकाँ अकल्पयन्॥13॥

उस परमपुरुष की नाभि अन्तरिक्ष थी। मस्तक से स्वर्ग प्रकट हुआ, पैरों से पृथ्वी, कानों से दिशाएँ हुईं। इस प्रकार समस्त लोक उस पुरुष में ही विद्यमान हैं। कल्पित हुए यह सब एक ही पुरुष की विभूतियाँ हैं, उन्हें जानो। नैवेद्य तथा जल अर्पित करें।

14. ताम्बूलम्–

देवान्भावयतानेन ते देवा भावयन्तु वः।
परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ॥ (3/11)

मुखशुद्ध्यर्थे ताम्बूलम् समर्पयामि।

इस यज्ञ द्वारा देवताओं की उन्नति करो (दैवी सम्पद् की वृद्धि करो) वे देवता तुम लोगों की उन्नति करेंगे। इस प्रकार आपस में वृद्धि करते हुए परम श्रेय को प्राप्त हो जाओ। इतना आपने प्राप्त कर लिया तो आपका मुख शुद्ध है। ऐसे महापुरुषों से भगवान ही बोलते हैं। अतः ताम्बूल, इलायची दें।

✦ ✦ ✦

ॐ यत्पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत।
वसन्तोऽस्यासीदाज्यं ग्रीष्म इध्मः शरद्धविः॥14॥

देवताओं ने उस पुरुष में ही हवि की भावना द्वारा यज्ञ सम्पन्न किया। इस यज्ञ में वसंत घृत, ग्रीष्म ईंधन और शरद् हवि था। इस प्रकार दिव्य वृत्तियों ने प्रत्येक वस्तु में उसका चिन्तन कर उस परमात्मा को जाना। सभी ऋतुओं में साधना का क्रम न टूटे, चलता रहे। अतः सदैव उसी एक का चिन्तन करना चाहिए। ताम्बूल-इलायची दें।

15. दक्षिणाम्–

द्रव्ययज्ञास्तपोयज्ञा योगयज्ञास्तथापरे।
स्वाध्यायज्ञानयज्ञाश्च यतयः संशितव्रताः॥ (4/28)

दक्षिणाद्रव्यम् समर्पयामि।

द्रव्य-सम्बन्धी यज्ञ (आत्मपथ में, सत्पुरुष के निमित्त द्रव्य देना भी एक यज्ञ है), तप-सम्बन्धी यज्ञ (आत्मपथ में इन्द्रियों का संयम), योग-यज्ञ करनेवाले तथा अहिंसादि तीक्ष्ण व्रतों से युक्त यत्नशील पुरुष **'स्वाध्याय-ज्ञानयज्ञाश्च'**– स्वयं का अध्ययन कि भगवान कहते क्या हैं? उनके निर्देशन को समझते हुए साधना-पथ पर आगे बढ़ें जिसके परिणाम में स्वरूप की उपलब्धि होती है। मन-क्रम-वचन से एक परमात्मा के प्रति समर्पण ही दान है।

✦ ✦ ✦

हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्।
स दाधार पृथिवीं द्यामुते मां कस्मै देवाय हविषा विधेम्॥

(ऋग्वेद, 1/121/1)

अर्थात् सोने जैसा चमकता हुआ परमात्मा सबसे पहले उत्पन्न हुआ। पैदा हुए सभी प्राणियों का वही एकमात्र पति हुआ। उसी ने पृथ्वी और आकाश को धारण किया। उसके अतिरिक्त किस देवता की हवि द्वारा पूजा करें? द्रव्य चढ़ायें।

16. प्रदक्षिणाम्–

नमः पुरस्तादथ पृष्ठतस्ते
नमोऽस्तु ते सर्वत एव सर्व।
अनन्तवीर्यामितविक्रमस्त्वं
सर्वं समाप्नोषि ततोऽसि सर्वः॥ (11/40)

प्रदक्षिणाम् निवेदयामि।

हे अत्यन्त सामर्थ्यवाले! आपको आगे से और पीछे से भी नमस्कार हो। हे सर्वात्मन्! आपको सब ओर से ही नमस्कार हो, क्योंकि हे अत्यन्त पराक्रमशाली! आप सब ओर से संसार को व्याप्त किये हुए हैं, इसलिए आप ही सर्वरूप और सर्वत्र हैं।

✦ ✦ ✦

ॐ सप्तास्यासन् परिधयस्त्रिः सप्तसमिधः कृताः।
देवा यद्यज्ञं तन्वाना अवध्नन्पुरुषं पशुम्॥15॥

दैवी सम्पद्युक्त लोगों ने यज्ञ करते समय योग की सात भूमिकाओं में प्रकृति, महत्तत्त्व, अहंकार, पञ्च स्थूलभूत, पञ्च सूक्ष्मभूत, पञ्च ज्ञानेन्द्रिय तथा तीन गुण इन इक्कीस समिधाओं का हवन करके उस पुरुषरूपी पशु को बाँध लिया। इन सबके हवन हो जाने पर जो शेष बचा रहता है, उसे जानो। साधन द्वारा वह अवश्य प्राप्त होता है। प्रदक्षिणा करें।

पुष्पाञ्जलि–

वायुर्यमोऽग्निर्वरुणः शशाङ्कः
प्रजापतिस्त्वं प्रपितामहश्च।
नमो नमस्तेऽस्तु सहस्रकृत्वः
पुनश्च भूयोऽपि नमो नमस्ते॥ (11/39)

आप ही वायु, यमराज, अग्नि, वरुण, चन्द्रमा तथा प्रजा के स्वामी, ब्रह्मा और ब्रह्मा के भी पिता हैं। आपको हजारों बार नमस्कार है, फिर भी बार-बार नमस्कार है।

✦ ✦ ✦

ॐ यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्।
ते ह नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः॥16॥

दैवी सम्पद को हृदय में ढालने वालों ने परमपुरुष की प्राप्तिरूपी उपरोक्त यज्ञ द्वारा यज्ञरूपी परमपुरुष का यजन किया। इस प्रकार के यज्ञ द्वारा सर्वप्रथम

धर्म की उत्पत्ति हुई। इसके आचरण से दैवी सम्पद् सम्पन्न लोग महान् महिमावाले होकर उस स्वर्गलोक का सेवन करते हैं, जहाँ साधनसम्पन्न योगी तथा दैवी गुणसम्पन्न लोग निवास करते हैं। पुष्पांजलि समर्पित करें।

(नोट– निम्नलिखित दो मंत्र ऋग्वेद में नहीं मिलते, किन्तु 'मूल उपनिषद्', 'परमात्मिकोपनिषद्', 'महावाक्योपनिषद्', चित्युपनिषद्' में पुरुष-सूक्त नाम से हैं।)

ॐ वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसस्तु पारे।
सर्वाणि भूतानि विचिन्त्य धीरो नामानि कृत्वाभिवदन् यदास्ते॥17॥

मैंने उस महान् पुरुष को जान लिया है, जो आदित्य के समान प्रकाशस्वरूप और अंधकार से परे है। (कहीं-कहीं 'तमसः परस्तात्' पाठ है।) वही सभी रूपों की रचना कर उनका नामकरण करता है और वैसा ही व्यवहार करते हुए सबकी बुद्धि में रमण करता है। वही इष्ट है।

ॐ धाता पुरस्ताद्यमुदाजहार शक्रः प्रविद्वान् प्ररिशश्चतस्रः।
तमेवंविदित्वातिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय॥18॥

पूर्वकाल में ब्रह्माजी ने जिसकी स्तुति की थी, इन्द्र ने चारों दिशाओं में जिसे व्याप्त जाना था, उस परम पुरुष को जो जानता है वह यहीं, इसी जन्म में अमृतपद प्राप्त कर लेता है, इसके अतिरिक्त अमर होने का अन्य कोई भी मार्ग नहीं है। उस एकमात्र परमेश्वर पर विश्वास लाना चाहिए और इसी जीवन में उसे प्राप्त कर लेना चाहिए।

✦ ✦ ✦

पुरुष-सूक्त के इन मंत्रों के अनुशीलन से स्पष्ट है कि एक परमात्मा में अपनी श्रद्धा को स्थिर करना ही कर्मकाण्ड का लक्ष्य है। इस परमात्मा को कहीं बाहर नहीं ढूँढ़ना है। पुरुष-सूक्त की मान्यता है कि इस परमात्मा को केवल मानसिक यज्ञ द्वारा ही पाया जाता है, अन्य कोई रास्ता नहीं है। जिसका आशय केवल इतना ही है कि भगवान् के लिए हृदय पवित्र कैसे बनाया जाय।

ऐसी ही स्वच्छता, समर्पण की भावना अपने हृदय में करें। बाहर तो मात्र नमूना (दृष्टान्त) है। अन्त में परमात्मा के निमित्त अर्पित सात्विक वस्तुओं को आपस में बाँटकर खाने की प्रथा है जिससे आत्मीयता, संगठन और एकता का संबंध हो।

सभी पुरोहितजन सदैव ध्यान में रखें कि एक परमपुरुष के अतिरिक्त अन्य देवी -देवताओं की ओर श्रद्धा को न ले जाएँ, क्योंकि ब्रह्मा से लेकर यावन्मात्र जगत् आवागमन के चक्कर में है। जिनका कोई अस्तित्व नहीं है, बढ़ावा देना अज्ञानियों का काम हैं। अस्तित्वविहीन को बढ़ावा देना नास्तिकता को बढ़ावा देना है।

विद्याविनयसम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि।
शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः॥ (5/18)

विद्या-वियनयुक्त ब्राह्मण तथा चाण्डाल में; गाय, कुत्ता और हाथी में पण्डितजन समान दृष्टि रखते हैं। अतः पण्डितजन इस उदार दृष्टिकोण का पालन करें और मानव मात्र के हित के लिए पद्मनाभ भगवान श्रीकृष्ण के श्रीमुख की वाणी गीता पर आधारित इस कल्याणप्रद प्रणाली का जन-जन तक प्रसार करें।

हरि ॐ शान्तिः! शान्तिः!! शान्तिः!!!

॥ इति षोडशोपचार पूजन-पद्धतिः ॥

॥ अथ हवन-पद्धतिः ॥

अग्नि को हवि-वाहक कहा जाता है।मान्यता है कि जिन देवताओं के लिए हवि अर्पित की जाती है अग्नि उसे उस देवता तक पहुँचाती है; किन्तु वास्तविकता तो यह है कि भगवान के पास अग्नि की पहुँच ही नहीं है। गीता में है– **'न तद्भासयते सूर्यो न शशाङ्को न पावकः। यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम॥'** (15/6) भगवान के उस परमधाम को न सूर्य प्रकाशित कर पाता है, न ही चन्द्रमा। वहाँ अग्नि की भी पहुँच नहीं है। ज्योतिर्मय परमात्मा के समक्ष सभी प्रकाश क्षीण हो जाते हैं किन्तु अग्नि अनिष्टों को जला सकती है, शुभ संकल्पों सहित परमात्मा के सुमिरण से मंगल विधानों की संरचना हो जाती है अतः हवन में परमात्मा की महिमा के श्लोक पढ़े जायँ और साथ में 'ॐ परमात्मने स्वाहा। इदम् परमात्मने न मम।' जैसी कामना की जा सकती है, जैसे- श्रीमद्भगवद्गीता के एकादश अध्याय में है–

पश्यामि देवांस्तव देव देहे
सर्वांस्तथा भूतविशेषसङ्घान्।
ब्रह्माणमीशं कमलासनस्थ-
मृषींश्च सर्वानुरगांश्च दिव्यान्॥ (11/15)
ॐ परमात्मने स्वाहा। इदम् परमात्मने न मम।

हे देव! आपके शरीर में मैं सम्पूर्ण देवों तथा अनेक भूतों के समुदायों को, कमल के आसन पर बैठे ब्रह्मा को, महादेव को, सम्पूर्ण ऋषियों को तथा दिव्य सर्पों को देखता हूँ।

अनेकबाहूदरवक्त्रनेत्रं
पश्यामि त्वां सर्वतोऽनन्तरूपम्।
नान्तं न मध्यं न पुनस्तवादिं
पश्यामि विश्वेश्वर विश्वरूप॥ (11/16)
ॐ परमात्मने स्वाहा। इदम् परमात्मने न मम।

विश्व के स्वामी! मैं आपको अनेक हाथों, पेट, मुख और नेत्रों से संयुक्त तथा सब ओर से अनन्त रूपों वाला देखता हूँ। हे विश्वरूप! मैं आपके आदि को और न अन्त को ही देखता हूँ अर्थात् आदि, मध्य और अन्त का निर्णय नहीं कर पा रहा हूँ।

किरीटिनं गदिनं चक्रिणं च
तेजोराशिं सर्वतो दीप्तिमन्तम्।
पश्यामि त्वां दुर्निरीक्ष्यं समन्ता-
द्दीप्तानलार्कद्युतिमप्रमेयम्॥ (11/17)

ॐ परमात्मने स्वाहा। इदम् परमात्मने न मम।

मैं आपको मुकुटयुक्त, गदायुक्त, चक्रयुक्त, सब ओर से प्रकाशमान तेजपुंज स्वरूप, प्रज्ज्वलित अग्नि और सूर्य के सदृश देखने में दुष्कर अर्थात् कठिनाई से देखा जाने वाला और सब ओर से बुद्धि आदि से ग्रहण न हो सकने वाला अप्रमेय देखता हूँ।

त्वमक्षरं परमं वेदितव्यं
त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम्।
त्वमव्ययः शाश्वतधर्मगोप्ता
सनातनस्त्वं पुरुषो मतो मे॥ (11/18)

ॐ परमात्मने स्वाहा। इदम् परमात्मने न मम।

भगवन्! आप जानने योग्य परम अक्षर (अक्षय परमात्मा) हैं। आप इस जगत् के परम आश्रय हैं, आप शाश्वत धर्म के रक्षक हैं तथा आप अविनाशी सनातन पुरुष हैं – ऐसा मेरा मत है।

अनादिमध्यान्तमनन्तवीर्य-
मनन्तबाहुं शशिसूर्यनेत्रम्।
पश्यामि त्वां दीप्तहुताशवक्त्रं
स्वतेजसा विश्वमिदं तपन्तम्॥ (11/19)

ॐ परमात्मने स्वाहा। इदम् परमात्मने न मम।

हे परमात्मन्! मैं आपको आदि, मध्य और अन्तरहित, अनन्त सामर्थ्य से युक्त, अनन्त हाथों वाला, चन्द्रमा और सूर्यरूपी नेत्रोंवाला तथा प्रज्ज्वलित अग्निरूप मुखवाला तथा अपने तेज से इस जगत् को तपाते हुए देखता हूँ।

द्यावापृथिव्योरिदमन्तरं हि
व्याप्तं त्वयैकेन दिशश्च सर्वाः।
दृष्ट्वाद्भुतं रूपमुग्रं तवेदं
लोकत्रयं प्रव्यथितं महात्मन्॥ (11/20)

ॐ परमात्मने स्वाहा। इदम् परमात्मने न मम।

हे महात्मन्! अन्तरिक्ष और पृथ्वी के बीच का सम्पूर्ण आकाश तथा सब दिशाएँ एकमात्र आपसे ही परिपूर्ण हैं। आपके इस अलौकिक, भयंकर रूप को देखकर तीनों लोक व्यथित हो रहे हैं।

अमी हि त्वां सुरसङ्घा विशन्ति
केचिद्भीताः प्राञ्जलयो गृणन्ति।
स्वस्तीत्युक्त्वा महर्षिसिद्धसङ्घाः
स्तुवन्ति त्वां स्तुतिभिः पुष्कलाभिः॥ (11/21)

ॐ परमात्मने स्वाहा। इदम् परमात्मने न मम।

समस्त देवताओं के समूह आप में ही प्रवेश कर रहे हैं और कई एक भयभीत होकर हाथ जोड़े हुए आपके गुणों का गान कर रहे हैं। महर्षि और सिद्धों के समुदाय स्वस्तिवाचन अर्थात् 'कल्याण हो'- ऐसा कहते हुए सम्पूर्ण स्तोत्रों द्वारा आपकी स्तुति कर रहे हैं।

रुद्रादित्या वसवो ये च साध्या
विश्वेऽश्विनौ मरुतश्चोष्मपाश्च।
गन्धर्वयक्षासुरसिद्धसङ्घा
वीक्षन्ते त्वां विस्मिताश्चैव सर्वे॥ (11/22)

ॐ परमात्मने स्वाहा। इदम् परमात्मने न मम।

रूद्र, आदित्य, वसु, साध्य, विश्वेदेव, अश्विनी कुमार, वायुदेव और अग्नि तथा गन्धर्व, यक्ष, राक्षस और सिद्धों के समुदाय सभी आश्चर्य से आपको देख रहे हैं।

रूपं महत्ते बहुवक्त्रनेत्रं
महाबाहो बहुबाहूरुपादम्।
बहूदरं बहुदंष्ट्राकरालं
दृष्ट्वा लोकाः प्रव्यथितास्तथाहम्॥ (11/23)

ॐ परमात्मने स्वाहा। इदम् परमात्मने न मम।

हे महाबाहो! आपको बहुत मुख और नेत्रों वाले, हाथ जंघा, पैरों वाले तथा बहुत उदरों वाले अनेक विकराल दाढ़ों वाले महान रूप को देखकर सब लोक व्याकुल हो रहे हैं तथा मैं भी व्याकुल हो रहा हूँ।

नभःस्पृशं दीप्तमनेकवर्णं
व्यात्ताननं दीप्तविशालनेत्रम्।
दृष्ट्वा हि त्वां प्रव्यथितान्तरात्मा
धृतिं न विन्दामि शमं च विष्णो॥ (11/24)

ॐ परमात्मने स्वाहा। इदम् परमात्मने न मम।

विश्व में सर्वत्र अणुरूप से व्याप्त हे विष्णो! आकाश को स्पर्श किये हुए, प्रकाशमान अनेक रूपों से युक्त, फैलाये हुए मुख और प्रकाशमान विशाल नेत्रों से युक्त आपको देखकर विशेषरूप से भयभीत अन्तःकरण वाला मैं धैर्य और मन के समाधानरूपी शान्ति को नहीं पा रहा हूँ।

दंष्ट्राकरालानि च ते मुखानि
दृष्ट्वैव कालानलसन्निभानि।
दिशो न जाने न लभे च शर्म
प्रसीद देवेश जगन्निवास॥ (11/25)

ॐ परमात्मने स्वाहा। इदम् परमात्मने न मम।

आपके विकराल दाढ़ों वाले और कालाग्नि के समान प्रज्ज्वलित मुखों को देखकर मैं दिशाओं को नहीं जान पा रहा हूँ। चारों ओर प्रकाश देखकर दिशाभ्रम हो रहा है। आपका यह रूप देखते हुए मुझे सुख भी नहीं मिल रहा है। हे देवेश! हे जगन्निवास! आप प्रसन्न हों।

अमी च त्वां धृतराष्ट्रस्य पुत्राः
सर्वे सहैवावनिपालसङ्घैः।
भीष्मो द्रोणः सूतपुत्रस्तथासौ
सहास्मदीयैरपि योधमुख्यैः॥ (11/26)

ॐ परमात्मने स्वाहा। इदम् परमात्मने न मम।

वे सब ही धृतराष्ट्र के पुत्र राजाओं के समुदाय सहित आप में प्रवेश कर रहे हैं और भीष्म पितामह, द्रोणाचार्य तथा वह कर्ण एवं हमारी ओर के भी प्रधान योद्धाओं सहित सबके सब-

वक्त्राणि ते त्वरमाणा विशन्ति
दंष्ट्राकरालानि भयानकानि।
केचिद्विलग्ना दशनान्तरेषु
सन्दृश्यन्ते चूर्णितैरुत्तमाङ्गैः॥ (11/27)

ॐ परमात्मने स्वाहा। इदम् परमात्मने न मम।

बड़े वेग से आपके विकराल दाढ़ों वाले भयानक मुखों में प्रवेश कर रहे हैं, तथा उनमें से कितने ही चूर्ण हुए सिरों सहित आपके दाँतों के बीच में लगे हुए दिखाई पड़ रहे हैं।

यथा नदीनां बहवोऽम्बुवेगाः
समुद्रमेवाभिमुखा द्रवन्ति।
तथा तवामी नरलोकवीरा
विशन्ति वक्त्राण्यभिविज्वलन्ति॥ (11/28)

ॐ परमात्मने स्वाहा। इदम् परमात्मने न मम।

जैसे नदियों के बहुत से जल-प्रवाह समुद्र की ओर दौड़ते हैं, समुद्र में प्रवेश करते हैं ठीक उसी प्रकार वे शूरवीर मनुष्यों के समुदाय आपके प्रज्ज्वलित मुखों में प्रवेश कर रहे हैं।

यथा प्रदीप्तं ज्वलनं पतङ्गा
विशन्ति नाशाय समृद्धवेगाः।
तथैव नाशाय विशन्ति लोका-
स्तवापि वक्त्राणि समृद्धवेगाः॥ (11/29)

ॐ परमात्मने स्वाहा। इदम् परमात्मने न मम।

जैसे पतंगा नष्ट होने के लिए ही प्रज्ज्वलित अग्नि में बड़े वेग से प्रवेश करते हैं वैसे ही ये सभी प्राणी भी अपने नाश के लिए आपके मुखों में अत्यन्त बढ़े हुए वेग से प्रवेश कर रहे हैं।

लेलिह्यसे ग्रसमानः समन्ता-
ल्लोकान्समग्रान्वदनैर्ज्वलद्भिः।
तेजोभिरापूर्य जगत्समग्रं
भासस्तवोग्राः प्रतपन्ति विष्णो॥ (11/30)

ॐ परमात्मने स्वाहा। इदम् परमात्मने न मम।

आप उन समस्त लोकों को प्रज्ज्वलित मुखों द्वारा सब ओर से निगलते हुए चाट रहे हैं, उनका आस्वादन कर रहे हैं। हे व्यापनशील परमात्मन्! आपकी उग्र प्रभा सम्पूर्ण जगत् को अपने तेज से व्याप्त करके तपा रही है।

आख्याहि मे को भवानुग्ररूपो
नमोऽस्तु ते देववर प्रसीद।
विज्ञातुमिच्छामि भवन्तमाद्यं
न हि प्रजानामि तव प्रवृत्तिम्॥ (11/31)

ॐ परमात्मने स्वाहा। इदम् परमात्मने न मम।

मुझे बताइये कि भयंकर आकारवाले आप कौन हैं? हे देवों में श्रेष्ठ! आपकों नमस्कार है, आप प्रसन्न हों। आदि स्वरूप! मैं आपको भली प्रकार जानना चाहता हूँ, क्योंकि आपकी प्रवृत्ति अर्थात् चेष्टाओं को नहीं समझ पा रहा हूँ।

आरती–

कविं पुराणमनुशासितार-
मणोरणीयांसमनुस्मरेद्यः।
सर्वस्य धातारमचिन्त्यरूप-
मादित्यवर्णं तमसः परस्तात्॥ (8/9)

आरार्तिक्यं निवेदयामि।

जो पुरुष सर्वज्ञ, अनादि, सबके नियन्ता, सूक्ष्म से भी अति सूक्ष्म, सबके धारण- पोषण करने वाले, अचिन्त्य, नित्य प्रकाश स्वरूप और अविद्या से परे उस परमात्मा का स्मरण करता है।

क्षमा-प्रार्थना–

यच्चावहासार्थमसत्कृतोऽसि
विहारशय्यासनभोजनेषु ।
एकोऽथवाप्यच्युत तत्समक्षं
तत्क्षामये त्वामहमप्रमेयम्॥ (11/42)

हे अच्युत! जो आप हँसी के लिए विहार, शैय्यासन और भोजनादि में अकेले अथवा उन लोगों के सामने भी अपमानित किये गये हैं, वह सब अपराध अचिन्त्य प्रभाव वाले आपसे मैं क्षमा चाहता हूँ।

पितासि लोकस्य चराचरस्य
त्वमस्य पूज्यश्च गुरुर्गरीयान्।
न त्वत्समोऽस्त्यभ्यधिकः कुतोऽन्यो
लोकत्रयेऽप्यप्रतिमप्रभाव ॥ (11/43)

आप इस चराचर जगत् के पिता, गुरु से भी बड़े गुरु और अति पूजनीय हैं। जिसकी कोई प्रतिमा नहीं, ऐसे अप्रतिम प्रभाववाले आपके समान तीनों लोकों में दूसरा कोई नहीं है।

तस्मात्प्रणम्य प्रणिधाय कायं
प्रसादये त्वामहमीशमीड्यम्।
पितेव पुत्रस्य सखेव सख्युः
प्रियः प्रियायार्हसि देव सोढुम्।। (11/44)

क्षमा-प्रार्थना निवेदयामि।

आप चराचर के पिता हैं, इसलिए मैं अपने शरीर को भली प्रकार आपके चरणों में रखकर प्रणाम करके, स्तुति करने योग्य आप ईश्वर को प्रसन्न होने के लिए प्रार्थना करता हूँ। हे देव! पिता जैसे पुत्र के, सखा जैसे सखा के और पति जैसे प्रिय स्त्री के अपराधों को क्षमा करता है, वैसे ही आप भी मेरे अपराधों को सहन करने योग्य है।

हरि ॐ शान्तिः! शान्तिः!! शान्तिः!!!

॥ इति हवन-पद्धतिः ॥

॥ ॐ श्री परमात्मने नमः ॥

॥ अथ षोडश संस्कारः ॥

(श्रीमद्भगवद्गीता द्वारा)

1. **गर्भाधान संस्कार-** (परमात्मा से ही उत्पत्ति)

मम योनिर्महद्ब्रह्म तस्मिन्गर्भं दधाम्यहम्।
सम्भवः सर्वभूतानां ततो भवति भारत॥14/3॥

हे अर्जुन! मेरी 'महद्ब्रह्म' अर्थात् अष्टधा मूल प्रकृति सम्पूर्ण भूतों की योनि है और उसमें मैं चेतनरूपी बीज को स्थापित करता हूँ। उस जड़-चेतन के संयोग से सभी भूत-प्राणियों की उत्पत्ति होती है।

सर्वयोनिषु कौन्तेय मूर्तयः सम्भवन्ति याः।
तासां ब्रह्म महद्योनिरहं बीजप्रदः पिता॥14/4॥

कौन्तेय! सब योनियों में जितने शरीर उत्पन्न होते हैं, उन सबकी 'योनिः' (गर्भधारण करने वाली माता) आठ भेदों वाली मूल प्रकृति है और मैं ही बीज स्थापन करने वाला पिता हूँ।

2. **पुंसवन संस्कार-** (पुरुषत्व प्राप्ति के लिये प्रार्थना। परमात्मा की प्राप्ति ही सर्वोत्कृष्ट पुरुषार्थ है।)

क्लैब्यं मा स्म गमः पार्थ नैतत्त्वय्युपपद्यते।
क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परन्तप॥2/3॥

अर्जुन! नपुंसकता को मत प्राप्त हो। यह तेरे योग्य नहीं है। हे परन्तप! हृदय की क्षुद्र दुर्बलता को त्यागकर युद्ध के लिए खड़ा हो।

(पुंसवन का उद्देश्य है कि बालक पुरुषार्थी और धर्म-परायण हो।पुत्र ही पैदा हो- यह आशय नहीं था। बहुत से माता-पिता कन्या तक ही सीमित रहते हैं, पुत्रों से वंचित पाये जाते हैं जबकि उन्होंने भली प्रकार पुंसवन संस्कार किया था। पुंसवन का आशय है बच्चों में धर्मवान, बलवान और पुरुषार्थी बनने की प्रेरणा प्रदान करना। अर्जुन ने सुभद्रा को चक्रव्यूह का ज्ञान कराया तो गर्भस्थ शिशु अभिमन्यु युद्धकला में निष्णात हो गया। अष्टावक्र के पिता वेदपाठ करते थे, जिसे उसकी माँ सावधान मुद्रा में श्रवण करती थी। परिणामस्वरूप अष्टावक्र वेद के ज्ञाता हो गये। प्रह्लाद की माँ कयाधू को देवर्षि नारद ने विष्णु-भक्ति की शिक्षा दी, जिसका अमिट प्रभाव उसकी जीवनचर्या में दृष्टिगोचर होता है। अतः गर्भ के तृतीय मास में पुंसवन संस्कार के द्वारा प्रतिदिन नियमित रूप से 'यथार्थ गीता' का पाठ सुनावें। माताएँ सावधान होकर सुनें। इससे शिशु शौर्यसम्पन्न, माता-पिता का आज्ञाकारी तथा सर्वगुणसम्पन्न होगा।

3. सीमन्तोन्नयन संस्कार– (केशों का उन्नयन)

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्॥9/22॥

अनन्य भाव से मुझमें स्थित भक्तजन मुझ परमात्मस्वरूप का निरन्तर चिन्तन करते हैं। उन नित्य एकीभाव में संयुक्त हुए पुरुषों का योगक्षेम मैं स्वयं वहन करता हूँ। (एक परमात्मा की ही सतत् शरण बनी रहे, उन्हीं का सुमिरन करें। गीता के अनुसार ओम् का जप श्रेयस्कर है।)

4. जातकर्म संस्कार– (जन्म के पश्चात् पूजन)

ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः।
मनःषष्ठानीन्द्रियाणि प्रकृतिस्थानि कर्षति॥15/7॥

शरीर ही लोक है। इस शरीर में जीवात्मा मेरा ही सनातन अंश है

और वही इन त्रिगुणमयी माया में स्थित मनसहित पाँचों इन्दियों को आकर्षित करता है।

5. **नामकरण संस्कार–** (मंगलमय विकासोन्मुख नाम रखते हुए पूजन करना)

ॐ तत्सदिति निर्देशो ब्रह्मणस्त्रिविधः स्मृतः।
ब्राह्मणास्तेन वेदाश्च यज्ञाश्च विहिताः पुरा॥17/23॥

ओम्, तत् और सत् ऐसा तीन प्रकार का नाम ब्रह्म का निर्देश करता है, स्मृति दिलाता है। उसी से पूर्व में (आरंभ में) ब्राह्मण, वेद और यज्ञादि रचे गये हैं अर्थात् ब्राह्मण, यज्ञ और वेद ओम् से पैदा होते हैं।

6. **निष्क्रमण संस्कार–** (अपने हृदय की मलिन अवस्था से बाहर निकलना)

ऊर्ध्वं गच्छन्ति सत्त्वस्था मध्ये तिष्ठन्ति राजसाः।
जघन्यगुणवृत्तिस्था अधो गच्छन्ति तामसाः॥14/18॥

सत्त्वगुण में स्थित हुआ पुरुष 'ऊर्ध्वमूलम्'-उस मूल परमात्मा की ओर प्रवाहित होता है। रजोगुण में स्थित राजस पुरुष मध्यम श्रेणी के पुरुष होते हैं और निन्दित तमोगुण में प्रवृत्त तामसी पुरुष 'अधोगति' अर्थात् पशु-पक्षी-कीट-पतंगादि योनियों को प्राप्त होते हैं। अतः माताओं को चाहिए कि इसी अवस्था में सात्विक रास्ता चुन लें। यह जानकारी होनी चाहिए कि हमारा कर्तव्य-पथ क्या है?

7. **अन्नप्राशन संस्कार-** (अन्न का अभ्यास, ब्रह्मामृत पान की राह दिखाना। 'अन्नं ब्रह्मेति व्यजानात्'– इस आत्मा के लिए ब्रह्म ही अन्न है।)

भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं–

अहं वैश्वानरो भूत्वा प्राणिनां देहमाश्रितः।
प्राणापानसमायुक्तः पचाम्यन्नं चतुर्विधम्॥15/14॥

मैं ही प्राणियों के शरीर में अग्निरूप से स्थित होकर प्राण और अपान से युक्त हुआ चार प्रकार के अन्नों को पचाता हूँ।

8. **चूड़ाकरण संस्कार-** (शिखा शीर्षस्थ सत्य की ओर इंगित करता है)

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥18/66॥

सम्पूर्ण धर्मों को छोड़कर केवल एक मेरी अनन्य शरण को प्राप्त हो। मैं तुझे सम्पूर्ण पापों से मुक्त कर दूँगा। तू शोक मत कर।

9. **कर्णवेध संस्कार–** (कानों को लक्ष्य पर टिकाना, अन्य चर्चा न सुनना)

सर्वगुह्यतमं भूयः शृणु मे परमं वचः।
इष्टोऽसि मे दृढमिति ततो वक्ष्यामि ते हितम्॥18/64॥

सम्पूर्ण गोपनीय से भी अति गोपनीय वचन को तू फिर भी सुन क्योंकि तू मेरा अतिशत प्रिय है, इसलिए यह परम हितकारक वचन मैं तेरे लिए फिर भी कहूँगा।

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे॥18/65॥

अर्जुन! तू मेरे में ही अनन्य मनवाला हो, मेरा अनन्य भक्त हो, मेरे प्रति श्रद्धा से पूर्ण हो (मेरे समर्पण में अश्रुपात होने लगे), मेरे को ही नमन कर। ऐसा करने से तू मुझे ही प्राप्त होगा।

10. विद्यारंभ संस्कार– (शिक्षारम्भ हेतु पूजन)

कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः
पृच्छामि त्वां धर्मसम्मूढचेताः।
यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे
शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्॥2/7॥

हे परमात्मन्! कायरता के दोष से नष्ट स्वभाववाला, धर्म के विषय में सर्वथा मोहित मैं आपसे पूछता हूँ। जो कुछ निश्चित परम कल्याणकारी हो वह साधन मेरे लिए कहिए। मैं आपका शिष्य हूँ, आपकी शरण में हूँ, मुझे साधिए- सँभालिए।

11. उपनयन संस्कार– (प्रभु के सामीप्य की दृष्टि प्राप्त करना)

भक्त्या त्वनन्यया शक्य अहमेवंविधोऽर्जुन।
ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्त्वेन प्रवेष्टुं च परन्तप॥11/54॥

हे श्रेष्ठ तप वाले अर्जुन! अनन्य भक्ति द्वारा (अर्थात् सिवाय मेरे अन्य किसी देवी-देवता का स्मरण न करते हुए) अनन्य श्रद्धा से मैं इस प्रकार प्रत्यक्ष देखने के लिए, तत्त्व से साक्षात् जानने के लिए तथा प्रवेश करने के लिए भी सुलभ हूँ।

12. वेदारम्भ संस्कार– (अविदित परमात्मा की जानकारी हेतु पूजन)

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः॥4/34॥

अर्जुन! तू तत्त्वदर्शी महापुरुष के पास जाकर भली प्रकार प्रणत होकर सेवा करके, निष्कपट भाव से प्रश्न करके तू उस ज्ञान को जान। वे तत्त्व को जानने वाले ज्ञानीजन तेरे लिए उस ज्ञान का उपदेश करेंगे।

13. केशान्त संस्कार– (अपने समस्त विचार आचार्य को समर्पित करना)

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम्॥9/27॥

अर्जुन! तू जो कर्म (यथार्थ कर्म) करता है, जो खाता है, जो हवन करता है, समर्पण करता है, दान देता है, मनसहित इन्द्रियों को जो मेरे अनुरूप तपाता है, वह सब मुझे अर्पण कर अर्थात् मेरे प्रति समर्पित हो।

14. समावर्तन– (गुरुकुल से प्रस्थान। जो कुछ सीखा है उसे लोकहितार्थ क्रियान्वित करना)

नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाच्युत।
स्थितोऽस्मि गतसन्देहः करिष्ये वचनं तव॥18/73॥

अच्युत! आपकी कृपा से मेरा मोह नष्ट हो गया है, मुझे स्मृति प्राप्त हुई है, अब मैं संशयरहित हुआ स्थित हूँ और आपकी आज्ञा का पालन करूँगा।

15. विवाह संस्कार– (परमात्मा में श्रद्धापूरित हृदय से गृहस्थ जीवन ग्रहण करना)

समोऽहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः।
ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम्॥9/29॥

भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं– सृष्टि में न मेरा कोई प्रिय है और न अप्रिय है किन्तु जो अनन्य भक्त है वह मुझमें है और मैं उसमें हूँ।

16. अन्त्येष्टि संस्कार– (एक परमात्मा की प्राप्तिहेतु ॐ का जप)

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय
नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णा-
न्यन्यानि संयाति नवानि देही॥2/22॥

जैसे मनुष्य जीर्ण-शीर्ण पुराने वस्त्रों को त्यागकर नये वस्त्रों को ग्रहण करता है, ठीक वैसे ही यह जीवात्मा पुराने शरीरों को त्यागकर दूसरे नये शरीरों को धारण करता है।

वस्तुतः शरीर संस्कारों पर आधारित है। जब संस्कार जीर्ण होते हैं, शरीर छूट जाता है। आत्मा संस्कारों के अनुसार नया शरीर धारण कर लेता है। मृत्यु शरीर का परिवर्तन मात्र है। आत्मा नहीं मरता। अतः–

ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन्।
यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम्॥8/13॥

जो पुरुष ओम् इतना ही, जो अक्षय ब्रह्म का परिचायक है उसका जप तथा मेरा स्मरण (ध्यान) करता हुआ शरीर का त्याग कर जाता है, वह परमगति को प्राप्त होता है।

हरि ॐ शान्तिः! शान्तिः!! शान्तिः!!!

॥ इति षोडश संस्कारः ॥

निष्कर्ष

गीता के षोडशोऽध्याय में भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं– **'द्वौ भूतसर्गो लोकेऽस्मिन्दैव आसुर एव च।'** (गीता, 16/6) अर्जुन! इस लोक में भूतों के स्वभाव दो प्रकार के होते हैं-देवताओं-जैसा और असुरों-जैसा। जब हृदय में दैवी सम्पद् कार्यरूप लेती है तो मनुष्य ही देवता है और जब आसुरी सम्पद् का बाहुल्य होता है तो मनुष्य ही असुर है। सृष्टि में ये दो ही जातियाँ हैं।

ये देव समुदाय थे तो हृदय की वस्तु; किन्तु कालान्तर में सत्पुरुषों के दर्शन और सान्निध्य के अभाव में, प्रशासनिक दबाव में शिक्षा को वर्ग-विशेष के लिए आरक्षित करने से भोली-भाली जनता में वाह्य देवताओं का सरलता से प्रसारण हो गया।

पूजा तो एक ईश्वर की ही थी किन्तु स्मृति और पुराणकाल में देवताओं के नाम पर आकृतियाँ एवं पुस्तकें बना ली गईं जो इन वैदिक ऋषियों की दृष्टि में अनुचित है। गीता के अध्याय सात में भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं कि सिवाय एक परमात्मा के कहीं भी कल्याण नहीं है, कहीं शरणस्थली नहीं है, किन्तु कामनाओं से जिनकी बुद्धि आक्रान्त हो जाती है, ऐसे मूढ़बुद्धि अविवेकीजन अन्य-अन्य देवी-देवताओं की पूजा करते हैं। एक परमात्मा के अतिरिक्त अन्य देवताओं की पूजा अविवेकियों के मन की उपज है, मूढ़बुद्धि की देन है।

अतः सभी विज्ञ पुरुषों को चाहिए कि जहाँ देवी-देवता लिखा है वहाँ भगवान तथा भगवान के किसी नाम के प्रति श्रद्धा तथा हृदय में दैवी सम्पद् का उत्कर्ष करना चाहिए (यही देवपूजा है) जिससे वे सत्य के प्रति सावधान हो जायँ और आंशिक संस्कार प्राप्त करें- यही विधि है।

सभी तीर्थ सही हैं, सभी देवमंदिर सही हैं। इनमें स्थापित देवता समय-समय पर होने वाले आपके पूर्वज हैं, जिन्होंने अपने हृदय में दैवी सम्पद् का उत्कर्ष कर एक परमदेव परमात्मा का साक्षात्कार कर स्थिति पायी थी। वे सदैव पूजनीय रहेंगे, उनका आशीर्वाद अनिवार्य है।मंदिर हमारी खुली पुस्तक हैं, संस्कृति की सुरक्षा है-उनसे प्रेरणा लेकर हम सबको उन्हीं की तरह उन परम प्रभु की शोध में अग्रसर हो जाना चाहिए। भजन वैसे ही करना है जैसा उन्होंने किया और शरण उन्हीं की जाना है जिनकी इन पूर्व महापुरुषों ने ली।

कर्मकाण्ड पूर्वजों की महान सूझ-बूझ थी कि प्रातः सोकर उठने पर, जमीन पर पाँव धरने पर, हाथ-मुँह धोते समय, आचमन करते समय, स्नान के समय, वस्त्र-परिवर्तन के समय अर्थात् जीवन के हर मोड़ पर भगवान का स्मरण होता रहे। स्मरण के साथ ही सब के सब प्रत्येक कार्य आरम्भ करें। इससे ईश्वरीय संस्कारों का सृजन होता जाता है। भगवान जानते हैं कि यह मुझे ही निरन्तर पुकार रहा है। ऐसे भक्तों की आत्मा से जागृत होकर भगवान ज्ञानरूपी दीपक के प्रकाश से प्रकृति से उत्पन्न अन्धकार को नष्ट कर देते हैं। वैदिक काल से लेकर सदैव कर्मकाण्ड में यही मन्त्र पढ़े जाते थे कि वह परमात्मा अनन्त हाथ-पैर-मुखवाला है, मुख धो लो। वह परमात्मा ऐसा है, भोजन करो। इन सबका एक ही आशय था कि हम एक परमात्मा के स्मरण और भगवत्-पथ से विचलित न हों, हमारी श्रद्धा टूट न जाय, समर्पण घट न जाय। मध्यकाल में शिक्षा के अभाव में एक परमात्मा की स्मृति धूमिल पड़ गयी, अनेक देवी-देवताओं में लोगों की श्रद्धा बिखर गयी जबकि मन्त्र एक परमात्मा में श्रद्धा के ही पढ़े जाते थे। आज वही आशय गीता के इन श्लोकों से है। गीता के श्लोकों और वैदिक पुरुष सूक्त का आशय एक ही है – आप इनसे एक परमात्मा में श्रद्धा स्थिर करने की प्रेरणा लें।

संसार के सभी मज़हबों में कर्मकाण्ड हैं, जिसमें वे अपने धर्मशास्त्रों

का पाठ कराते हैं। आप कर्मकाण्ड में क्या कर रहे हैं? धर्मशास्त्र के रूप में गीता प्रस्तुत करें। पुरुष-सूक्त, स्वस्तिनः इत्यादि के प्राचीन मंत्र भी पढ़े जा सकते हैं। किन्तु धर्मशास्त्र गीता को ही बताया जाय।

विशेष- षोडश संस्कारों में प्रमुख जन्म, अन्नप्राशन, विवाह एवं अन्त्येष्टि तथा गृहारम्भ एवं गृह-प्रवेश के समय पूजा-स्थलियों पर तदनुकूल विविध प्रतीक सजाये जाते हैं, जो कल्याण के सूचक और पूर्वजों द्वारा आविष्कृत हैं। ये प्रतीक ज्यों-के-त्यों सजाने चाहिए किन्तु श्लोक और अर्थ ऊँचे स्वर में बोलने चाहिए जिससे कि बच्चा-बच्चा प्रभावित होकर अपने लक्ष्य के प्रति निष्ठावान और सुसंस्कारी हो सके।

नारायण बलि

समाज में अकाल मृत्यु की मान्यता है तथा उस जीव को सद्गति प्रदान करने के लिए नारायण-बलि की व्यवस्था है जिसका आशय है नारायण के प्रति समर्पण! भगवान श्रीकृष्ण साक्षात् नारायण तथा अर्जुन नर हैं अतः उन नारायण की उपासना ही सद्गति प्रदान करती है। उन प्रभु के प्रति अपने आपको समर्पित कर दें – यही नारायण बलि है। **'इति गुह्यतम् शास्त्रं'–** गीता गोपनीय से भी अति गोपनीय शास्त्र है, उन्हीं भगवान् नारायण के श्रीमुख की वाणी है, सम्पूर्ण क्रमबद्ध साधन है, इसका निरन्तर पाठ होना चाहिए।

शोकाकुल समुदाय को शान्ति प्रदान करने के लिए यह पूजन अवश्य होना चाहिए। दुर्घटनाग्रस्त जीवात्मा की शान्ति के लिए, उस आत्मा के कल्याणार्थ इस पूजन को अवश्य करना चाहिए। साथ ही श्रीमद्भागवतगीता को समझने के लिए 'यथार्थ-गीता' का अखण्ड पाठ मंगलमय है।

अनुरोध– सुसंस्कृत करने वाले पूजा-पद्धति के ये श्लोक हिन्दी अर्थसहित सुनाये जायँ। जहाँ हिन्दी भाषा प्रचलन में न हो वहाँ की क्षेत्रीय भाषा में अनुवाद करके इसे समझाया जाय। संस्कृत अब बोलचाल की भाषा नहीं रही। शिक्षार्थी जिस भाषा में समझ सकें, श्लोकों का सम्मान रखते हुए उसी भाषा में अर्थ बताया जाय तभी कर्मकाण्ड के उद्देश्य की पूर्ति होगी और आप सदैव श्रद्धा के पात्र होंगे।

ॐ शान्तिः! शान्तिः!! शान्तिः!!!

आदिशास्त्र गीता

विश्व का आदिशास्त्र गीता है । इसके अध्याय ४ में भगवान श्री कृष्ण कहते है , ''अर्जुन! इस अविनाशी योग को मैंने कल्प के आदि में सूर्य के प्रति कहा था । सूर्य ने उस अविनाशी योग को मनु के प्रति कहा मनु ने इक्ष्वाकु के प्रति कहा । इक्ष्वाकु से राजर्षियो ने जाना और यह अविनाशी योग इस महत्वपूर्ण काल से इस धरती पर लोप हो गया था, वही मैं अब तेरे प्रति कहने जा रहा हूँ क्योंकि तू मेरा प्रिय भक्त और अनन्य सखा है'' । सृष्टी के प्रवर्तक मनु के समक्ष वेदों का आविर्भाव हुआ था, किन्तु गीता का अविनाशी योग मनु के पिता सूर्य से कहा गया । इस प्रकार गीता का अविनाशी योग पद्मनाभ भगवान के श्री मुख से पहले प्रसारित हुआ उसके पश्चात वेद मनु के समक्ष प्रसारित हुये । वेद ज्ञाता मनु गीतोक्त अविनाशी योग के संवाहक मनु जिसमें ईश्वर एक प्राप्ति का साधन एक तथा उसे प्राप्त करने का अधिकार सबको एक जैसा है, वह भेद-भाव भरी-स्मृति लिखकर समाज के अन्दर दरार कैसे डाल सकता है ।

अनित्यमसुखं लोकमिमं प्राप्य भजस्व माम् ॥ गीता ९/३३ ॥ अर्जुन! तुम सुख रहित क्षण भंगुर इस दुर्लभ मनुष्य शरीर को प्राप्त होकर मेरा भजन कर । देव दुर्लभ मानवतन की सार्थकता मात्र ईश्वर की प्राप्ति के लिए है । गीता के इस सन्देश के ज्ञाता मनु किसी मानव तन को अस्पृश्य कैसे कह सकते हैं ?

प्रतीत होता है, मनु महाराज के प्रति जन मानस की अटूट श्रध्दा देखकर किन्ही परिस्थितियों में इन महापुरुषों के नाम पर कथित स्मृतियों द्वारा सामाजिक व्यवस्थाओं को धर्म की संज्ञा देकर चला दिया, जिनका इन महापुरुषों से कुछ भी लेना देना नही है । अतः मनुवाद एक भ्रान्ति है ।

– स्वामी अड़गड़ानन्द

श्री परमहंस स्वामी अड़गड़ानन्दजी आश्रम ट्रस्ट

न्यू अपोलो एस्टेट, गाला नं 5, मोगरा लेन (रेलवे सबवे के पास)

अंधेरी (पूर्व), मुम्बई – 400069 फोन - (022) 28255300

ई-मेल - contact@yatharthgeeta.com वेबसाइट - www.yatharthgeeta.com